हिन्दू देवताओं के विविध रूप और वाहन

हिन्दू देवताओं के विविध रूप और वाहन
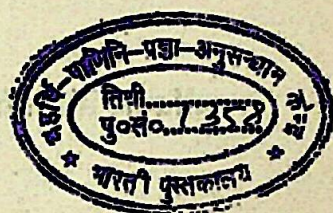
लेखक
बनारसी लाल पाण्डेय 'आर्य'

मुख्य विक्रेता
विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी

प्रकाशक

श्री बनारसीलाल पाण्डेय आय

ग्रंथालयी

अभिमन्यु पुस्तकालय

वाराणसी

मूल्य २०.०० रुपये

प्रकाशन काल

चैत्र शुक्ल रामनवमी, संवत् २०३७

मुद्रक :

जय भारत प्रेस

बांसफाटक, वाराणसी

दो शब्द

हिन्दू समाज में उपास्य देवों की योंही अगणित संख्या है, जिनमें कभी वैदिक, अवैदिक का भेद भले ही रहा हो, किन्तु आज सभी सम्मलित हो गए हैं, चाहे वे पौराणिक देवता हो अथवा आरण्य निवासियों के ग्राम देवता हों, या वे बौद्ध-जैन काल में तिब्बत आदि देशों से आ गए हों, सभी को सनातन धर्म की उदारता ने ग्राह्य कर लिया है।

देवताओं के विविध स्वरूपों और वाहनों में कुछ ऐसे भी स्वरूपों की कल्पना की गई है जैसे काली का विकराल रूप, गणेश का विशाल काय और वाहन मूषक। इसी प्रकार मत्स्यावतार, वाराह अवतार, कच्छप रूप, हयग्रीव, किसी का सिंह मुख, किसी का रासभ मुख, किसी का अश्वमुख है। इनके वाहन भी भिन्न-भिन्न हैं, जैसे—वृषभ, मकर, कच्छप, रासभ, सिंह, अजा, अश्व आदि।

भले ही इन स्वरूपों की कल्पना में कोई गूढ़ रहस्य छिपा हो पर साधारण जन में इनके वैचित्र्य को देखकर अनपढ़ तो क्या पढ़ा लिखा शिक्षित व्यक्ति भी इनके बारे में एक दूसरे से चर्चा कर बैठता है। मन्दिर के पुजारियों से इसकी जिज्ञासा करने पर समाधान होना तो दूर रहा वे पूछने वालों को सीधे नास्तिक की संज्ञा से सम्बोधित करने लगते हैं। अन्य सम्प्रदाय के लोग तथा पाश्चात्य शिक्षा में ढले लोग ऐसी प्रतिमाओं के प्रति बहुत सी उल्टी-सीधी, मनगढ़न्त अनर्गल बातें कहकर इनका उपहास करते देखे गए हैं, जबकि प्रत्येक हिन्दू देवताओं तथा पौराणिक कथाओं की आधार शिला सुदृढ़ है। उनके भाव उच्च और शिक्षाप्रद हैं।

ऐसे रहस्यों का ज्ञान संस्कृत साहित्य में ही छिपा रह गया है। इसपर अधिकारिक विद्वानों ने भी प्रकाश डालने की कभी चेष्टा नहीं की, जिसके कारण हिन्दी में ऐसी जन उपयोगी पुस्तकों का अभाव-सा बना रहा है। मेरे मस्तिष्क में पौराणिक कथाओं के सम्बन्ध में अनेक बार रह-रह कर कुछ ऐसी शंकाएँ सी उठा करती थीं कि इन कथाओं का अभिप्राय क्या है? कहा जाता है कि बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। मस्तिष्क और हृदय की जिज्ञासा ने मुझे इस अनुसन्धान की ओर प्रवृत्त कर इस पुस्तक को लिखने को प्रेरित किया।

बहुत दिनों की बात है, जब मेरे मुहल्ले में वाराणसी के शिवालाघाट का निवासी ७५ वर्षीय एक बूढ़ा मुहम्मद रज़ाक मियाँ काम करने आया करता था। एक रोज बातों ही बातों में उसने कहा, देखो हिन्दुओं के देवी-देवता कैसे हैं? इनकी काली कैसी बदसूरत है जो महादेव के ऊपर जुबान निकाले खड़ी है और शीतला देवी तो गदहे पर बैठी है, जैसे उनको कोई और सवारी मिली ही न हो।

सुनने वाले सुनकर ही रह गए। किसी ने उस मियाँ का कोई उत्तर न दिया। हम सभी आवेश में आ गए। एक ने इशारे से हमसे कहा बूढ़ा है, फिर भी प्रतिकार की भावना शांत न हुई। मुझे पता चला कि बूढ़ा हींग की महक से बहुत चिढ़ता है, अतः मैंने हींग घोलकर उसके कपड़ों पर छिड़क कर अपना आक्रोश शांत किया। बूढ़ा हींग की महक से बड़ा बड़बड़ाया और फिर कभी उसने उस रोज से कोई प्रश्न नहीं किया।

उस दिन से मेरे हृदय में ऐसे रहस्यों को जानने की जिज्ञासा बढ़ने लगी। मैंने संकल्प लिया कि इसे जानकर ही विश्राम लूंगा। मैं बराबर इसी प्रयास में लगा रहा। कहावत है "जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।" सच्ची लगन और जिज्ञासा होनी चाहिए। सफलता अवश्य हाथ लगती है। मैं ज्यों-ज्यों ग्रन्थों का अध्ययन करता गया त्यों-त्यों मेरी उत्सुकता और बढ़ती गयी। इस कार्य में अनेक बाधायें और कठिनाइयां आयीं, किन्तु मैंने साहस, धैर्य और परिश्रम करना नहीं छोड़ा। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई संस्कृत भाषा के ज्ञान की थी। देवभाषा पर पूर्ण अधिकार न होने से मैं यह स्पष्ट नहीं कह सकता कि मुझे इस ग्रन्थ को लिखने में कितनी सफलता मिली है, फिर भी जहाँ तक मेरा प्रयास रहा है, मैंने हिन्दी के अनुवादित ग्रन्थों से ही सहायता ली है। इतना तो अवश्य है कि यदि इस विषय पर कोई अन्य अधिकारी विद्वान प्रकाश डालता तो यह कहीं उत्तम और सन्तोषप्रद ग्रन्थ होता। भगवद् कृपा से जहाँ तक मुझसे बन पड़ा मैंने अपने इस चिरकालीन संकल्प को पूर्ण किया है।

इस पुस्तक की उपादेयता तथा सफलता विज्ञ पाठकों पर ही निर्भर करती है, यदि यह पुस्तक थोड़ा भी इस विषय में ज्ञान प्राप्त करा सकी तो मैं जीवन में अपने को धन्य समझूंगा।

धन्यवाद प्रकाश—अन्त में मैं उन सहयोगी विद्वान मित्रों को नहीं भूल सकता जिन्होंने इस संकल्प को पूर्ण करने में मेरी सहायता की है। ऐसे मित्रों में पं० गिरजा शंकर पाण्डेय, आचार्य कृष्ण मोहन ठाकुर, दैनिक 'आज' के सहसम्पादक श्री बुद्धिनाथ मिश्र, श्री जगदीश दास शास्त्री, श्री अनुज प्रसाद सिंह, डा० मोहनलाल तिवारी हैं, मैं हृदय से इनके प्रति धन्यवाद प्रकाश करता हूँ।

आभार प्रदर्शन—मैं उन सहभागी ग्रन्थों के लेखकों के प्रति भी अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ जिनके सद्-ग्रन्थों से इस पुस्तक को लिखने में मुझे विशेष सहायता मिली है।

मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० भोलाशंकर व्यास का भी विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के संदर्भ में प्राक्कथन लिखने की महती कृपा की है। मैं जय भारत प्रेस के व्यवस्थापक श्री बैजनाथ प्रसाद जी को भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक को संवार-सुधार कर मुद्रित किया है।

ब्रह्म को छोड़कर कोई भी अपने में पूर्ण नहीं है अतएव ग्रन्थ में त्रुटियों का रह जाना सम्भव है। ऐसी दशा में हम सबसे क्षमा याचना करते हुए 'त्वदीय वस्तु गोविन्दः तुभ्यमेव समर्पये' के शब्दों के साथ आपके कर-कमलों में इस ग्रन्थ को अर्पित करते हैं।

रामनवमी २४ मार्च १९८०।

बनारसीलाल पाण्डेय 'आर्य'
संस्थापक
अभिमन्यु पुस्तकालय
डो. ४५/१९४ ए., गुरुबाग, वाराणसी
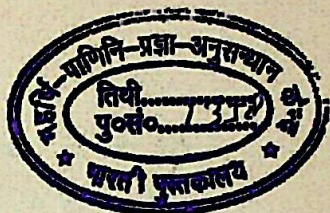
प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति के इतिहास में हिन्दू देवी-देवताओं की परिकल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है। यह परिकल्पना भारतीय मानस के विकास से पूरी तरह जुड़ी हुई है। प्रकृति की रहस्यात्मक स्थिति को समझने के लिए मानव ने विभिन्न युगों में किन्हीं अति मानवीय देव शक्तियों की समय-समय पर परिकल्पना की है और यथार्थ को पकड़ पाने में जहाँ पर मानव असमर्थ रहा है, उसे किसी अज्ञात शक्ति से सम्बद्ध कर दिया गया है। यह प्रवृत्ति मानव के विकास में आदिम युग से ही परिलक्षित होती है। भारतीय ही नहीं यदि हम मिश्र, सुमेर, बेबीलोनिया और मेक्सिको की मय जाति की सस्कृतियों का अध्ययन करें तो हमें पता चलेगा कि वहाँ भी अनेक प्राकृतिक तथ्यों को व्याख्यायित करने के लिए विभिन्न दैवी शक्तियों की कल्पना की गयी है। भारतीय धर्म साधना का, विशेषतः हिन्दू धर्म साधना का, एक प्रधान अङ्ग देववाद है।

हिन्दू धर्म, इस्लाम या अन्य सभी मजहबों की तरह एकेश्वरवादी न होकर मूलतः बहुदेव वादी है। यद्यपि उपनिषद और वेदान्त दर्शन में परात्पर सत्ता एक ही मानी गयी है और वहाँ "एकंसदविप्राबहुधा वदन्ति" इस सिद्धान्त की स्थापना की गयी है, तथापि व्यवहार में हिन्दू धर्म में बहुसंख्यक देवमण्डल विद्यमान है। इस देव मण्डल के विभिन्न देवताओं के व्यक्तित्व विकास की कहानी निस्सन्देह भारतीय संस्कृति के इतिहास का एक दिलचस्प पक्ष है और यह सांस्कृतिक तत्वविज्ञान, इतिहास, पुराण और, यहाँ तक की सौन्दर्यशास्त्र जैसे विविध ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों से जुड़ा है। जब तक हम इन सब दृष्टियों से इस विषय का अध्ययन नहीं करेंगे तब तक हिन्दू देवी-देवताओं के विकास की कहानी अधूरी रह जायेगी।

भारतीय संस्कृति वस्तुतः एक ऐसी संस्कृति है जिसमें एक महा संस्कृति है, जिसमें अनेक सांस्कृतिक धाराओं का समागम हुआ है। आग्नेय, किरात, द्रविड़, आर्य, शक, हूण और यवन तथा तुरुष्क संकृतियों ने अपने अपने ढङ्ग से हमारी संस्कृति को विकसित बनाने में योग दिया है और किसी न किसी रूप में इनमें से कई का भारतीय देवी देवताओं की परिकल्पना में समय समय पर योग दान रहा है। कहा जाता है कि आर्य वैदिक-संस्कृति मूलतः मूर्तिपूजक नहीं थी किन्तु बहुदेववाद स्पष्टतः प्रतिष्ठित है और वरुण, इन्द्र, रूद्र, उषस जैसे अनेक देवों और देवियों की परिकल्पना मिलती है। वेद-मन्त्रों में इनके आकार, रूप, वेश-भूषा, आयुध; वाहन इत्यादि का भी संकेत मिलता है। उदाहरण के लिए उषस् प्रातः काल के समय परिपुष्ट घोड़ों से जुते दीप्त सुनहरे रथ में पूर्ण यौवना युवती की तरह आकाश से पृथ्वी पर उतरती चित्रित की गयी है। प्रायः सभी देवशक्तियों को वेद में मानवीय परिवेश में परिकल्पित किया गया है, यद्यपि उनके गुणों का वर्णन करते समय उन्हें अतिमानवीय दैवी स्वरूप दे दिया गया है। वैदिक

आर्यों की इस देव सम्बन्धी परिकल्पना का अध्ययन करने के लिए हमें ग्रीक और रोमन देवताओं के विषय में भी अध्ययन करना होगा, क्योंकि मूलतः ये सभी एक ही मूल कबीले की आदिम मनोवृत्ति से जुड़े हुए हैं और इसके विविध दिशाओं में परवर्ती विकास हैं। मैक्समूलर जैसे भारत-यूरोपीय पुराण-कथनों के विश्लेषकों और फ्रेजर जैसे सांस्कृतिक नृतत्व वैज्ञानिकों ने इसका विस्तार से अध्ययन किया है, जो द्रष्टव्य है।

कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति में मूर्तिपूजा द्रविड़ों की देन है। यहाँ तक कि कुछ विद्वान समाविस्त शिव, गणेश, कार्तिकेय जैसे देवताओं की परिकल्पना को द्रविड़ देन मानते हैं। शिव जैसी मूर्ति का हड़प्पा और मोअनजोदड़ों के उत्खनन में पाया जाना इसके प्रमाण के रूप में पेश किया जाता है। द्रविड़ और आर्य संस्कृतियों के संगम के बाद मूल आर्य देव-मंडल में क्या-क्या परिवर्तन हुआ इस इतिहास का अध्ययन भी काफी मजेदार है एवं इसका पता वैदिक देवमंडल की तुलना के साथ पौराणिक देव मंडल की तुलना से बखूबी चल सकता है। वेदों के वरुण और इन्द्र का महत्व पुराणों में आकर कम हो चला है। इन्द्र फिर भी किसी तरह देवराज बने रहते हैं, पर वरुण तो एक साधारण देवता बन गए। वेदों के विष्णु जो केवल सूर्य के प्रतीक हैं, अब पुराणों में आकर प्रधान परात्पर सत्ता के प्रतीक बन गए। वेदों के रुद्र पुराणों में महादेव या शिव के साथ घुलमिल गए और पुराणों में एक नए देवता का भी विकास हो गया—चतुर्मुख ब्रह्मा, जिनका नामोनिशान वेदों में नहीं है और इस तरह पुराणों में सबसे पहले हमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश इस परात्पर सत्ता की त्रिविध परिकल्पनामयी देवत्रयी (ट्रिनिटी) की उपलब्धि होती है, जो समस्त देवताओं से अधिक शक्तिशाली और संसार के सर्जन, पालन और संहार के नियामक हैं। पुराणों में ही देवों के विविध रूप, गणेश, कार्तिकेय और कुबेर, कामदेव, अनेक ग्रह देवता—सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध इत्यादि के अतिरिक्त इनमें से कई देवताओं की पत्नियों और शक्तियों की भी कल्पना मिलती है, जैसे लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती आदि। इतना ही नहीं भारतीय भूगोल से जुड़े हुए कई महत्वपूर्ण स्थानों, नदियों, पर्वतों, वृक्षों, इत्यादि को तथा पशुओं और पक्षियों तक को देवता के रूप में स्वीकार कर लिया गया है, उदाहरण के लिए गंगा और यमुना जैसी नदियां, हिमालय जैसे पर्वत—जिसे कालिदास स्वयं देवात्मा कहता है—गरुड़, हनुमान, शेषनाग जैसे विविध जीव-जन्तु भी हिन्दू देव मंडल में मिल जाते हैं। इतना स्पष्ट है कि देव मंडल का यह विकास आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों से भिन्न स्रोत का है। विद्वानों का यह मत है कि गंगा, यमुना जैसी नदियों को देवियां मानने की परिकल्पना निषादों (आग्नेय परिवार) की देन है, कुबेर, यक्ष, कामदेव जैसे देवों की परिकल्पना किरातों (पहाड़ी जातियों) की देन है और मध्ययुग में तो बंगाल में सर्पमातामनसा धर्मदेव जैसे नये देवताओं की भी परिकल्पना मिलती है, जो कहीं तो आदिम जनजातियों से आये हैं, कहीं बौद्ध धर्म से। आगे चलकर देवी के विविध रूप तारा, छिन्नमस्ता, आदि भैरव और अन्य कई तांत्रिक देवताओं का विकास तिब्बत और भोट प्रदेश में विकसित बौद्ध-तान्त्रिक साधना की भारती

संस्कृति को देन है। मध्य युग में भी इस्लाम के आगमन के बाद हिन्दू धर्म साधना में कई पीरों, पहुंचे फकीरों तक को अपने देव मंडल में शामिल कर लिया है। इसे बताने की आवश्यकता नहीं।

श्री बनारसी लाल पाण्डेय 'आर्य' ने 'हिन्दू देवताओं के विविध रूप और वाहन' पुस्तक में हिन्दू देव मंडल के संबंध में अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन देवताओं के आकार-प्रकार, वेष-भूषा, साज-सज्जा, वाहन आदि का कहाँ-कहाँ वेद, पुराण, प्राचीन काव्य आदि में वर्णन मिलता है और उनका प्रतीकात्मक अर्थ क्या है, इसको श्री आर्य ने अपनी पुस्तक में बखूबी संकेतित किया है। मध्य युग में भारतीय मूर्ति कला का जो विकास हुआ, उसके समानान्तर इस विषय का अध्ययन अधिक उपयोगी हो सकता है। संस्कृति में मूर्तिकला का सूत्रधार मंडल के 'रूपावतार' जैसे कुछ ग्रंथ मिलते हैं। जिनमें विविध देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण कैसे किया जाय, उनके स्वरूप, आयुध, वाहन इत्यादि को किस तरह पत्थर में तराशा जाय या धातु में ढाला जाय, इसका उल्लेख है। मूर्तिकला शास्त्र के इन प्राचीन ग्रंथों के साथ इस विषय का अध्ययन और अधिक प्रमाणिक हो सकेगा। हिन्दू देवमूर्ति शास्त्र के अतिरिक्त बौद्धों और जैनों की धर्म साधना में जिन देवी-देवताओं की मूर्तियों की परिकल्पना मिलती है, उसे भी साथ में अध्ययन के लिए लिया जाय तो इस दिशा में अच्छा कार्य हो सकता है, क्योंकि यह सभी एक ही भारतीय मनोवृत्ति के विविध रूपायन हैं, जो परस्पर निस्सन्देह सम्बद्ध रहे हैं। उस दिशा में श्री आर्य का यह प्रयास हिन्दू मूर्तिशास्त्र (आइकोनोंग्राफी) के अध्येताओं के लिए पथ-प्रदर्शक हो सकता है और उन्हें इस दिशा में और अधिक ठोस शोध-खोज करने के लिए प्रेरणा दे सकेगा, ऐसा मुझे विश्वास है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वा रा ण सी
१ फरवरी, १९८०।
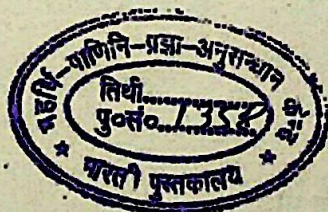
भोलाशंकर व्यास
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग

विषय-सूची

लेख के नाम | पृष्ठ

गणेश-वाहन मूषक

दन्तञ्च परशुं पद्मं मोदकञ्च गजाननः ।
गणेशो मूषिकारूढो बिभ्राणः सर्वकामदः ॥

—रूपमण्डनम्

विघ्नविनाशक गजानन गणेश जी का भारी-भरकम शरीर, विशाल लम्बोदर आदि को देख
जहाँ एक ओर उनके प्रति जिज्ञासाएँ जाग उठती हैं, वहीं उस महत् शरीर के नीचे निर्भय
में पूँछ फटकारकर मोदक खाते हुए चूहे को देखकर मन में अद्भुत कुतूहल और विभिन्न
भी उत्पन्न हो जाते हैं। देवताका शरीर अतिशय विशाल, प्रशस्त ललाट, बड़े-बड़े गजकर्ण,
ी सूंड़, विकराल दाँत, भारी तोंद, बलिष्ठ अंगों वाला सुपुष्ट वपु और उधर उनकी सवारी
क दीन-हीन और निरीह दुर्बल, लघुकाय मूषक। आखिर बेचारा गणेशजी का इतना भारी
कैसे ढो पाता होगा? यह तो मूषक जाने अथवा जाने स्वयं मूषक के विघ्नविनाशक
ति जी। क्योंकि उस लघुतम जीव की तंग पीठ पर पूरी सवारी करने में असुविधा जानकर
-राशि गणेश या तो कुछ न कुछ चातुरी करके अपना भारी बोझ हलका करते होंगे,
ा बृहद् आकार समेटकर मूषक जैसे लघु संस्करण के हो जाते होंगे। ऐसा भी हो सकता
 वे मूषक को अपने अनुकूल वाहन बनाते होंगे। जो भी हो, कौन इस विवाद में पड़े।
तो केवल इतना देखना है कि गणपति और बुद्धिराशि जैसे परमशूर और बुद्धि के देवता का
न यह चंचल कुतर्की मूषक कैसे हो गया?

मूषक के गणेशवाहन होने में प्रस्तुत सन्देह पौराणिक काल से चला आ रहा है। विद्वानों
मूषक के वाहन होने के कारणों को दो प्रकार से सिद्ध किया है। प्रथमतः तो पुराणकार
द धर्मप्राण विद्वानों का एक पक्ष है जो पौराणिक कथाओं द्वारा मूषक के पूर्वकृत के इतिहास
आधार पर उसका अस्तित्व सिद्ध करते हैं। दूसरा पक्ष उन विद्वानों का है जो इन पौराणिक
ाओं में शब्दशः विश्वास न कर अपने ज्ञान के चमत्कार से कुछ न कुछ तर्कयुक्त संगति बैठाकर
ार्य के साथ ही युक्तिसंगत आधार बैठाते हैं। ऐसे विद्वानों में कुछ जैन तथा इतर पंडित
े हैं। गणेशपुराण के उत्तरखण्ड के अध्याय एक सौ चौंतीस तथा एक सौ पैंतीस (१३४, १३५)
मूषक के गणेश-वाहन होने की एक बड़ी ही रोचक तथा विस्तृत कहानी वर्णित है। उस कथा
अनुसार मूषक अपने पूर्वजन्म में क्रौंच नाम का गंधर्व था। यह गंधर्व एक दिन सुमेरु पर्वत
निवास करने वाले महर्षि सौभरि के आश्रम में गया। उस समय ऋषि अपने आश्रम में
स्थित न थे। ऋषि-पत्नी 'मनोमयी' आश्रम में अकेली थीं। उन्होंने सौजन्यवश गंधर्व से
ल-क्षेम पूछ कर उसे जलादि पिलाया। ऋषि-पत्नी को एकान्त में पाकर गंधर्व के मन में पाप
उदय हुआ। काम से मोहित हो उसने विवेक त्याग कर ऋषि पत्नी का हाथ पकड़ लिया।
नोमयी' उस दुष्ट गन्धर्व से त्राण पाने के लिए अपना हाथ छुड़ाने की चेष्टा करने लगीं। वह
ोधपूर्वक डाँट ही रही थीं कि इतने में ऋषि सौभरि वहाँ आ गये। परम तेजस्वी सौभरि
देखते ही क्रौंच भयभीत हो उठा। वह ऋषि-पत्नी का हाथ छोड़कर उनसे क्षमा माँगने

लगा। क्रुद्ध ऋषि ने उसे शाप दे दिया कि 'तूने छिपकर व्यभिचार करना चाहा था, अतः तू छिप कर रहने वाला मूषक हो जा'! शाप को सुनते ही गन्धर्व व्याकुल हो उठा। उसने महर्षि के चरणों में गिरकर बहुत ही अनुनय-विनय किया और कहा कि महाराज! संयोगवश मुझसे ऐसा दुष्टकर्म हो गया। मैंने आपकी पत्नी का केवल हाथ पकड़ा था, उसे भी आपको देखकर छोड़ दिया। इतने छोटे अपराध के लिए इतना बड़ा दण्ड! प्रभो! मुझे क्षमा करें तथा मेरे शाप-मोचन का उपाय बतलायें।

ऋषि ने कहा—'द्वापर में पराशर के घर गजानन अवतार लेंगे। उस समय वह तुझे अपना वाहन बनायेंगे और तब तू स्वर्ग को प्राप्त करेगा।

यह सुनते ही क्रौंच गन्धर्व महर्षि पराशर के आश्रम में मूषक होकर गिर पड़ा। उसने स्वभाववश पराशर के आश्रम में अनेक उपद्रव करना आरम्भ कर दिया। वह महर्षि के मिट्टी के पात्र आदि को कुतर-कुतर कर खा गया। पुस्तक, वल्कल, वस्त्र अथवा यज्ञादि की जो भी वस्तुएँ थीं उन्हें काट-काट कर नष्ट करने लगा। तपोवन में लगे सुकोमल वृक्षों की क्षति करने लगा। अपने तपोवन को इस प्रकार से नष्ट होते देख पराशर बड़े दुःखी हुए। एक दिन उन्होंने अपने पुत्र गजानन से कहा—

'अब हम किसकी शरण में जायें! कौन हमारी रक्षा करेगा?' पिता को सांत्वना देते हुए गजानन ने कहा—'आप चिन्ता न करें! मैं सब ठीक कर दूँगा'। ऐसा कह कर गणेश ने अपना पाश अभिमन्त्रित कर छोड़ा। मूषक बँध गया। वह घबड़ाया कि यह कौन व्यक्ति है जिसने मुझको बांध लिया है? क्या अब मेरा अन्तकाल आ गया है? उधर गणेश जी ने अपने मनोबल से पाश को खींचा। पाश के खींचते ही मूषक उसके साथ आ गया। गजानन के सम्मुख आते ही मूषक उनकी स्तुति करने लगा। उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर गणेश जी ने उसे वर मांगने को कहा। इस पर मूषक ने कहा—आप ही मुझसे वर मांगिये, मैं किसी से वर नहीं मांगता। यह सुनकर गणेश जी हँसने लगे। उन्होंने कहा—

'तथास्तु', आज से तूं मेरा वाहन हो जा।' मूषक ने उसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वह मूषक गणेश का वाहन बन गया।

मूषक के गणेशवाहन होने का एक अन्य कारण भी बताया गया है। 'वैदिक सम्पत्ति' नामक अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में (पृष्ठ एक सौ अट्ठावन) श्री रघुनन्दन शर्मा ने बताया है कि गणेश के स्वरूप और ॐ शब्द में घनिष्ठ सम्बन्ध है। गणेश मंगल, शुभारम्भ के देवता हैं और यह कार्य ॐ शब्द से किया जाता है। यह ॐ शब्द मंगलाचरण के लिए लिखा जाता है। शीघ्रता में लिखते-लिखते यही ओम् शब्द कुछ काल बाद गजानन बन गया। इस प्रकार गणेश जी के वर्तमान रूप का प्रादुर्भाव हुआ। भाषाविदों के अनुसार 'अ' कार गणपति का शरीर है। 'ो' की मात्रा उनके मुँह का अग्रभाग 'सूँड़' है। 'ओं' में अकार सूँड़ तथा 'ो' की मात्रा एक दन्त है। 'ओं' की मात्रा में जो अनुस्वार बिन्दु है, वही उनका मोदक है, प्लुत का ३ चिन्ह मूषक वाहन है। ओम् और गजानन के रूप के विषय में आधुनिक विद्वान जो कुछ भी कहते हैं वह निराधार नहीं है। इस तर्क का मूलाधार पुराणों में ही है।

ॐकाररूपी भगवान् यो वेदान्तो प्रतिष्ठितः।
यं सदा मुनयो देवा स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि॥

ओंकाररूपी भगवानुक्तस्तु गणनायकः।
यथा सर्वेषु कार्येषु पूज्यतेऽसौ विनायकः॥

प्रमाद, अल्पज्ञान अथवा अन्य साम्प्रदायिक कारणों से जब विद्वान समझे जाने वाले पुरुष अनर्गल और भ्रामक बातें करने लगते हैं, तो उनकी बुद्धि पर खेद होता है।

वास्तव में आक्रोशवश वे सामान्य शिष्टता और सद्भाव तक को भूल जाते हैं। गणेश के ऐसे आलोचकों की भी कमी नहीं है। उनमें से एक विद्वान् राहुल सांकृत्यायन ने गणेश के हाथ के मोदक को अण्डा बताया है। इसी प्रकार किसी ने उन्हें अवैदिक बताया तो किसी ने चतुर नेता। परन्तु सत्य तक पहुँचने का प्रयास न होने के कारण उनके तर्क थोथे और साम्प्रदायिक विद्वेष से भरे हैं। वास्तव में मूषक के गणेश-वाहन होने के तर्क के पीछे एक बहुत ही सुन्दर कल्पना निहित है। गणेश एक ओर जहाँ शुभ कार्य, मंगल, बुद्धिकारी सिद्धि आदि के प्रतीक हैं तो चूहा इन प्रवृत्तियों का घोर विरोधी। चूहा अतिशय चालाक, कुतर्की, अन्धकार में रहने वाला छिद्रान्वेषी और चञ्चल जीव होता है। गणेश का उसे वाहन बनाने का अर्थ चञ्चल प्रवृत्तियों को दबाकर अपने वश में रखने से है।

मूषक का स्वभाव दुर्वृत्तियों से भरा रहता है। इस सम्बंध में पुराणों से लेकर साहित्य तक में अनेक कथाएं मिलती हैं। चूंकि वह भूमि के भीतर बिल खोद कर दूर तक चला जाता है, सूंघ कर ही अनुकूलता और प्रतिकूलता का ज्ञान कर लेता है, अन्धकार में देख लेने की उसकी चाक्षुष शक्ति बड़ी तीव्र है। उसके कान बड़े-बड़े और श्रवण-प्रवीण होते हैं। यह घोर संग्रही और लोभी होता है। अपनी इसी संग्रही और लोभी प्रवृत्ति के कारण यह मारा जाता है। देहातों में खेतों में और शहरों में गलियों के नीचे बड़ी दूर-दूर तक खोदकर यह सुरंगों का जाल बिछा देता है, जिससे नीचे का हिस्सा खोखला हो जाता है। घर के कागज पत्र, कपड़ों आदि का तो वह घोर शत्रु है। इस प्रकार मूषक का स्वभाव अनेक दुर्वृत्तियों का प्रतीक है जिसे वश में रख कर चलना बुद्धिमानों का काम है। गणेश बुद्धि के प्रतीक हैं। वे अपने बुद्धि-पराक्रम से अपनी विरोधी प्रवृत्तियों को देखकर स्वयं उन पर सवार हो जाते हैं। मूषकवाहन का सरल और सच्चा अर्थ इतना ही है।

सुप्रसिद्ध जैन विद्वान श्री चम्पत राय जी का भी मत है कि मूषक चतुर, विवेकी, विभाजक, भेदकारक, विस्तारक, विश्लेषक है। इसी भांति दूसरे पक्ष में गणेश का सिर कटना अहंकार का नाश होना तथा हाथी का सिर लगना नयी बुद्धि की संयोजना है। ज्ञान तथा तन्मूलक व्यवहार के लिए सामान्य और विशेष इन दोनों तत्वों का परिचय आवश्यक है। विभाजक और समाहारक दोनों प्रकार की बुद्धियों की आवश्यकता होने पर उनमें प्रधानता समन्वय बुद्धि की हो जाती है। इसी कारण से गणेश का वाहन चञ्चल चूहा और सूंड़ हाथी का दिखाया जाता है।

मूषक-वाहन की एक और कथा है। एक बार गणेश जी का गजमखासुर नामक दैत्य से भयानक युद्ध हुआ था। उसने उस युद्ध में गणेशजी का दाहिना दांत तोड़ दिया था। गणपति ने उस टूटे हुए दांत से ही उस दैत्य पर ऐसा भयानक प्रहार किया कि शत्रु विवश हो घबरा कर छिपने के लिए मूषक बन कर भागा और इधर-उधर छिद्र खोजने लगा, परन्तु सावधान

गणेश ने उसे तत्काल पकड़ लिया। मूषक काम आने लगा। इस कथासे दैत्य रूपी तामस वृत्तियों पर विजय प्राप्त कर उसे स्ववश में रखने का संकेत है।

इसी प्रतीक के आधार पर मूषक के गणेशवाहन का अर्थ करते हुए अन्य विद्वानों ने कहा कि आत्मज्ञान में, अभेद बुद्धि में, जो मानव परिनिष्ठित रहता है, वही विघ्न करनेवाले चूहों की (विघ्नकारी शंकाओं की) सेना को दबा कर अपने काबू में ला सकता है, उन पर सवार हो सकता है।

निम्नतम जीव चूहा से लेकर प्रबलतम जीव हाथी तक जो समान व्यवहार करता है, वह बुद्धिराशि गणेश हैं। एक मत यह भी है।

यजुर्वेद के तीसरे अध्याय का सत्तावनवाँ (५७ वाँ) मन्त्र है—'एष ते रुद्र भागः सह स्वसाम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा एते रुद्रभाग आखुस्ते पशुः।'—अर्थात्रुद्र यह तुम्हारा भाग है। अम्बिका और बहिन के साथ इसे ग्रहण करो। चूहा तुम्हारा पशु है। इस मन्त्र का प्रसंग यह है कि रुद्र के लिए एक पुरोडाश चूहों की खोदी मिट्टी में डाल दिया जाता है। रुद्र देवता हैं, उनकी भगिनी अम्बिका का भी स्वभाव क्रूर है। वह जरा (बुढ़ापा) आदि को उत्पन्न कर शत्रु का विनाश करती हैं। चूहों का भी यही स्वभाव होता है।

यहाँ ध्यान देने की बात इतनी ही है कि मूषक रुद्र का पशु है। लगता है रुद्र-पुत्र (गणेश) ने शत्रु (गजमुखासुर) पर विजयी होने के उपरान्त उसे अपना वाहन बना लिया।

डॉ॰ भगवानदास और डॉ॰ सम्पूर्णानन्द ने भी गणेशजी के ऊपर लिखा है। परन्तु इन लोगों ने गणेश-वाहन मूषक के सम्बध में अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया। इन दोनों सज्जनों ने मुख्यतः जैन विद्वान श्री चम्पतराय के ही मत का समर्थन किया है।

मूषक का चञ्चल स्वभाव होने की कथाएँ भारतीय पौराणिक भण्डार में अनेक हैं। कभी वह ऋषि के आश्रम में दीन, हीन, लघु प्राणी बनकर रहने से घबरा कर ऋषि की प्रार्थना कर उनसे कोई नया रूप माँगता है और कई योनि को बदल कर पुनः सिंह बन जाता है। परन्तु वह अपने दुष्ट स्वभाव के कारण पुनः मूषक हो जाता है। एक दूसरी कथा में अफीमकी उत्पत्ति मूषक से बतायी गयी है। किसी ऋषि के आश्रम में रहने वाला मूषक महत्वाकांक्षा के कारण ऋषि से वरदान प्राप्त कर क्रमशः बिल्ली, कुत्ता, सूअर, बन्दर, हाथी और राजकन्या होकर अन्त में अफीम का पौधा बन गया। इस कथा से भी मूषक के क्षण-क्षण बदलने वाले अस्थिर स्वभाव का ज्ञान होता है। ऐसे चञ्चल और अस्थिर स्वभाव वाले प्राणी का नियन्त्रण आवश्यक है। मूषक का वाहन होना इसी नियन्त्रण का द्योतक है।

गणेश और स्वस्तिक की एकरूपता का सबसे पुष्ट प्रमाण यजुर्वेद के इस मंत्र से मिल जाता है—

स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवा
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदा।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमि
स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ १ ॥

ब्रह्मा-वाहन हंस

अखण्ड चैतन्य समुद्र के जिस अंश में सृष्टि-क्रिया प्रकाशित हो उस चैतन्य का नाम ब्रह्मा है। जिससे क्रिया-शक्ति प्रकाशित हो, वही ब्राह्मी, ब्रह्मा है। उस चेतनाधिष्ठान को जो क्रियाशक्ति प्रकाशित करती है उसका वाहन भी तदनुरूप ही होगा।

अतः ब्रह्मा या ब्राह्मी-शक्ति का वाहन हंस है। हंस जीव को कहते हैं। व्यष्टि मन समष्टि मन का अंशमात्र होने के कारण समष्टिमन विराट है। मन का धर्म कल्पना है। जो ब्राह्मी नामक शक्ति है वह हंसवाहिनी है। प्रत्येक जीव में जो विभिन्न संकल्प देखा जाता है, वह उसके मध्य होकर यह समष्टि मन का प्रकाश समा जाता है। अतः जीव ही सृष्टि शक्ति का परिचालक है। हंस उज्ज्वल वर्ण है तथा उसमें नीर-क्षीर विवेकिनी शक्ति है। यदि जीवन प्रकाश नहीं तो सृष्टि शक्ति के ज्ञान का उपाय नहीं हो सकता है। जनसाधारण में एक भजन प्रचलित है—

ना घर तेरा ना घर मेरा'

यह चिड़िया हंस बसेरा है। हंसा जात अकेला।

यानी यह मानव देह एक पिंजड़ा है और जीव उसमें बैठा पंछी है। अंकुश रूप ब्रह्म ज्ञान है जिससे पक्षी गुणों को सीखता है।

जब कोई विद्वान पुरुष अपनी विवेक बुद्धि के द्वारा संसार सागर के समस्त भौतिक सुखों को त्यागकर ब्रह्मप्राप्ति-के लिए साधना करता है तो उसे सन्त-महात्मा, परमहंस, परिव्राजकाचार्य आदि अलंकारों से विभूषित किया जाता है। इस प्रकार भी प्राणी में जीवरूपी आत्मा को ही हंस माना गया है। इस पर अनेक विद्वानों ने अपने भाव प्रकट किये हैं।

ब्रह्मा के दस मानस पुत्र :—मत्स्य महापुराण के तीसरे अध्याय में एक उपाख्यान है जिसमें मनु के पूछने पर मत्स्य भगवान ने बताया—सृष्टि उत्पन्न करने के पहले ही देवताओं के पितामह ब्रह्मा ने तपस्या के प्रभाव से अंगों एवं शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष उपांगों (साहित्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा आदि) के पदक्रम समेत वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। इन सम्पूर्ण शास्त्रों के प्रादुर्भाव के पूर्व ब्रह्मा जी ने कभी भी नष्ट न होने वाले परम पुनीत शतकोटि संख्यक विस्तृत पुराण का स्मरण किया। तदुपरान्त उनके मुखों से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। तदनन्तर आठों प्रमाणों सहित मीमांसा और न्याय शास्त्र का भी उन्हीं से आविर्भाव हुआ। वेदाभ्यास में निरत रहने वाले ब्रह्मा ने पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से सर्वप्रथम अपने मन से दस मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। मन की इच्छा से उत्पन्न मानस पुत्र हैं (१) मरीचि, (२) अत्रि (३) अंगिरा, (४) पुलस्त्य, (५) पुलह, (६) क्रतु, (७) प्रचेता, (८) वशिष्ठ, (९) भृगु, (१०) नारद ऋषि। इन मातृहीन मानसपुत्रों के अतिरिक्त प्रजापति ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से दक्ष प्रजापति, स्तनान्त भाग से धर्मराज, हृदय से कुसुमायुध, भौंहों के मध्य से क्रोध, अहंकार, मद, कण्ठ से प्रमोद, आंखों से मृत्यु अर्थात् सारा विश्व एवं समस्त प्राणी ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न हुआ। यहाँ ये ब्रह्मा के मानस-पुत्र कोई भौतिक जगत के मनुष्य देह धारी प्राणी नहीं हैं, बल्कि ऋषि हैं।

प्रकृति के तीन गुण—सत्व, रजस, और तमस गुण से युक्त प्रकृति उत्पन्न हुई। इन्हीं तीन गुणों के उत्कर्ष से तीन देव हुए—ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ये त्रिदेव एक होते हुए भी विभिन्न तीन नामों से प्रसिद्ध हैं। इन्हीं तीन गुणों के विकारों के प्रमुख अंश से महत् तत्व की उत्पत्ति होती है। उसी महत्तत्व से मान की वृद्धि से अहंकार की उत्पत्ति होती है। उस अहंकार से दसों इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। इनमें बुद्धि के अधीन रहने वाली पांच इन्द्रियों को ही ज्ञानेन्द्रिय बताया गया है। इन पांचों के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियां कर्म के अधीन रहती हैं। कान, त्वचा (चमड़ी), नेत्र, जिह्वा तथा नासिका कर्मेन्द्रियां हैं। इनके अतिरिक्त 'मन' नामक एक ग्यारहवीं इन्द्रिय है—जिसमें कर्म और ज्ञान दोनों इन्द्रियों के गुण पाये जाते हैं। जो सूक्ष्म इन्द्रियां (इन्द्रियों के सूक्ष्म अवयव) मनीषी की मूर्ति का आश्रय लेती हैं, उन्हें तन्मात्रा कहते हैं। जिससे तन्मात्राओं का आश्रय लिया जाता है—उसे ही शरीर कहते हैं। इसी शरीर में निवास करने के कारण विद्वान लोग जीव को शरीर कहते हैं। सृष्टि करने की इच्छा से प्रेरित होकर मन ही सृष्टि का प्रारम्भ करता है। शब्द तथा स्पर्श दो गुणों वाली हुई। इसके अनन्तर वायु और स्पर्श तन्मात्र आश्रय से तेज की उत्पत्ति हुई। इसी त्रिगुणात्मक तेज के विकार एवं इस तन्मात्र के आश्रयण से चार गुणों वाले जल की उत्पत्ति हुई जो प्रायः रस गुण प्रधान रहता है। गन्ध तन्मात्र के आश्रयण से पांच गुणात्मिका पृथ्वी का आविर्भाव हुआ पर वह भी हमेशा गन्ध गुण—युक्त रहती है। इनका ज्ञान रखना उत्तम बुद्धि है।

हंस के विशेष गुण—१. हंस निर्मल वर्ण का होता है।

२. इसकी गति गम्भीर एवं शान्त प्रवृत्ति है।

३. हंस में नीर-क्षीर विवेक का गुण है।

४. हंस के जल में रहने पर भी उसके पर जल से प्रभावित नहीं होते।

यह हमारे लिए शिक्षा है कि इस संसार-सागर में निवृत्त भाव से रहना चाहिए।

हंस ब्रह्मा का रूप है—महाभारत के शान्तिपर्व में युधिष्ठिर को उपदेश देने की कथा से प्रमाणित होता है कि हंस ही आत्म ज्ञान रूपी ब्रह्मा है—जो सम्पूर्ण चर-अचर में व्याप्त है।

हंसो भूत्वाथ सौवर्णस्त्वजो नित्यः प्रजापतिः।
स वै पर्येति लोकांस्त्रीनथ साध्यानुपागमत्॥

नित्य अजन्मा प्रजापति सुवर्णमय हंस का रूप धारण करके तीनों लोकों में विचरते हुए साध्यगणों के पास पहुंचे। साधारण अज्ञानी जन (जिन्हें भी पक्षी रूप में माना गया) इस भाव से भी आत्मज्ञान को ही ब्रह्म तथा ज्ञानीजन को परमहंस माना गया है।

■

विष्णु-वाहन गरुड़

शंख - चक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम् ।
+ + + + गरुडोपरि संस्थितम् ॥

भगवान् अच्युत शंख और चक्र धारण करते हैं। ये द्युतिमान होने से 'देव' कहे गये हैं। इनकी चार भुजाओं में चार आयुध हैं—शंख, चक्र, गदा और पद्म। इनका वाहन गरुड़ है। इनके अनन्त गुण होने से अनन्त नाम भी हैं। इनका वर्णन विष्णुपुराण, पद्मपुराण, भागवत, महाभारत आदि ग्रन्थों में है। हमें विष्णु-वाहन के पहले विष्णुरूप पर भी ध्यान देना आवश्यक है जिसके साधारण उपासक तथा शिल्पकार की कल्पना पर आधारित विष्णु, शाक्र, अर्यमान, धाता, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण आदि अनेक नम हैं। पुराणों में विष्णु के अनेक रूपों का वर्णन मिलता है।

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्न वदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ।:
—पद्मपुराण

मेघश्याम शरीरस्तु पीतवासश्चतुर्भुजः ।
शेषशायी जगन्नाथो वनमाला - विभूषितः ॥

विष्णु का रूप सौन्दर्य कहीं तो वस्त्राभूषण से सुसज्जित है और कहीं श्याम वर्ण और पीताम्बर में है। उनकी शेष की शैया है और स्थान क्षीर सागर है।

शेषशायी भगवान् विष्णु :—सहस्रशीर्ष पुरुष अनन्त है। उसके एक अंश में यह जगत स्थित कहा जाता है। विष्णु उसका वह रूप है जो इस विश्व में व्याप्त हो गया है। बचा हुआ जो शतकोटि अनन्त ब्रह्म है वह सहस्रशीर्ष पुरुष है। उसका ही शेष (शेषनाग) यह रूप है। क्योंकि विश्व के बाद जो शेष रहता है वही है शेष अनन्त चित्र। इसी प्रकार विष्णु के चार आयुधों के चार गुण हैं। शंख से जागृत रहने के लिए नाद का बोध होता है। चक्र से विश्व के सदैव चलाय मान (गतिशील) रहने का बोध होता है। ओज, बल आदि से चक्र, गदा दुष्ट लोगों के दमन का प्रतीक है। धर्म ज्ञान आदि से युक्त कमल जल में रहते हुए भी उसके प्रभाव से रहित है। इसी प्रकार भगवान् विष्णु भी सांसारिक माया से परे हैं। अपने साधकों को भी उसी प्रकार से सांसारिक प्रपञ्चों से दूर रहने के लिए कमल संकेत करता है।

क्षीर सागर—क्षीर सागर से प्रायः लोग उसके स्थूल एवं शाब्दिक अर्थ जलराशि के रूप में ही मानते हैं। कुछ लोग उसे भवसागर भी कहते हैं। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी ने जिस क्षीर सागर का वर्णन किया है वह अनन्त आकाश देश विस्तृत अर्थात्-तेजोमय प्रकृति सागर है जिसमें शेष या शयन करने वाला नारायण है। तेजोमय पदार्थ का नाम "नार" [illegible] जो अरिमेय शक्ति का अनादि पुरुष इसमें शेष या अनन्त सत्ता पर शयन करता है उसका नाम 'नारायण' है।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

जल और जीवों का नाम नारा है। वे अयन अर्थात् निवास स्थान हैं। सब जीवों में व्यापक होने से विष्णु का नाम नारायण है।

वैदिक साहित्य में आकाश मण्डल ही विष्णु का क्षीर सागर या समुद्र है और सूर्य को विष्णु कहा गया है। इस प्रकार आकाश क्षीर सागर, शेषनाग विष्णु की शय्या है जो अनन्त नाम आकाश सूर्य का ही है।

वैदिक ग्रन्थों में अहि नाम मेघ का है जो सर्प का भी एक नाम है। सूर्य की अनन्त किरणें ही शेष हैं तथा विष्णु सूर्य के प्रतीक हैं। इस पर अनेक विद्वानों के अपने-अपने मत हैं। मूलतः इसके रहस्य-ज्ञान के लिए ज्योतिषशास्त्र की शरण लेनी होगी। इस प्रसंग पर 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' ग्रन्थ के लेखक महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने बड़े ही तर्क पूर्णढंग से विवेचन करते हुए अनेकों प्रमाण प्रस्तुत किये हैं।

गरुड़-वाहन—आकाशी नक्षत्रों में प्रधान ताराओं को वैदिक ग्रन्थों में इन्द्र, अग्नि विष्णु, बृहस्पति, वरुण आदि देवताओं के नाम से संकेत किया गया है जिसके अनुसार चित्रा नक्षत्र का स्वामी तैत्तिरीय शाखा के इन्द्र हैं जो प्रथम शब्द निर्दिष्ट होने से तार्क्ष्य से युक्त हैं। श्रावण मास के तीन तारे हैं।

इन तीन ताराओं को संस्कृत में तृक्ष कहते हैं और तृक्ष का स्वार्थ में तद्धित अण प्रत्यय से तार्क्ष्य रूप बना लिया गया है। तार्क्ष्य नक्षत्र के स्वामी विष्णु हैं। इस प्रकार तार्क्ष्य (गरुड़) विष्णु का वाहन प्रतीक है। विष्णु या सूर्य का अंश यह नक्षत्र सूर्य के क्रान्ति वृत्त की अन्तिम सीमा पर पड़ता है और तृक्ष अरिष्ट नेमी भी कहा गया है जो आपत्तियों का विनाशक सूर्य रथ चक्र की नेमि (परिधि) पर रहता है। वेद में अहि नाम मेघा का है जो सूर्य का भी नाम है। सूर्य अपनी किरणों के द्वारा ही विश्व की प्रत्येक वस्तु में प्रवेश कर शक्ति प्रदान करता है एवं मेघा का भक्षण कर जाता है। यहां किरण रूपी गरुड़ द्वारा सर्प रूपी मेघा का भक्षण करने का रूपक है।

आगे भगवान विष्णु वाहन गरुड़ का वर्णन श्री मद्भागवत के द्वादश स्कन्ध के एकादश अध्याय में लिखा है। 'त्रिवृद्वेदः सुपर्णाम्' यहाँ तीन वेदो का नाम गरुड़ रूप है। वे ही अन्तर्यामी परमात्मा को वहन करते हैं। गरुड़ पक्षी के ज्ञान और कर्म नामक दो पक्ष हैं। 'योगवाशिष्ट' में लिखा है—

उभयामेव पक्षाभ्यां यथा खे यान्ति पक्षिणः।
तथैव ज्ञानकर्माभ्यां जायते परमं पदम्॥
केवलात् कर्मणो ज्ञानान्नहि मोक्षोऽभिजायते।
किन्तु ताभ्यां भवेत् मोक्षःसाधनं तु भवद्विदः॥

[illegible]पासक (साधक) ज्ञान और कर्म द्वारा ही साधना करता है। जब जीव वेदोक्त कर्मकाण्ड [illegible] ज्ञानमय अनुष्ठानों में तत्पर होता है तब वह पक्षी होता है। वेद प्रतिपादित कर्म और ज्ञान ही गरुड़ के दो पंख हैं। इसके अतिरिक्त भी गरुड़ के अन्य नाम हैं। जैसे नागान्तक और मन

शोषण आदि। हृदय में विष रख कर कुटिल चाल चलने एवं सर्प के समान वक्र गति से सांसारिक विषयों में अन्धाधुन्ध दौड़ने से अशान्ति उत्पन्न होती है और सदाचार एवं भगवद्भक्ति से मनुष्य दूर हट जाता है। अतः नाम के अनुसार गरुड़ कुटिल गति वाले विषधर सर्प, भुजंगों का भी भक्षण करते हैं। जीवों के छल, कपट, असत्य, अन्याय, अत्याचार और विषय-वासना आदि विकारों से दूर कर शुद्ध सत्य और सदाचार पर चलने की प्रेरणा देते हैं। गरुड़ द्वारा काल रूपी नागों का भक्षण करने के सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने अपने 'मानस' में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

खगपति सब धरि खाए, माया नगर बरूथ।
माया विगत भार सब हरषे बानर यूथ॥

गरुड़ और भगवान् विष्णु के स्वरूप का वर्णन 'नारदपुराण' में भी मिलता है।

यह गरुड़ अत्यन्त सुन्दर पंखों वाला कहा गया है। कहीं-कहीं गरुड़ को गरुत्मान् रूप से साम्य दिखाया गया है। ये अरुण के बड़े भाई, सूर्य को हतप्रभ करने वाले और विनता एवं कश्यप के पुत्र हैं। महाभारत में वे स्वर्ग से अमृत चुराने के कारण अमृतहर्ता कहे गये हैं (इस कार्य से गरुड़ विख्यात हुए। विष्णु ने गरुड़ से अपना वाहन बनने की इच्छा की। गरुड़ ने इसे स्वीकार किया और विष्णु के वाहन बन गये।) पंख सुनहले होने से ये सुपर्ण कहलाते हैं। पुराण कथाओं में गरुड़ अवतार भी कहा गया है।

गरुड़ के विविध रूप और अंग[1] :—विष्णु धर्मोत्तर पुराण में गरुड़ को हरे वर्ण का बताया गया है। वहां इन्हें 'कौशिक' (उल्लू) के समान नासिका वाला कहा गया है। इनके नेत्र गोल और चार भुजाएं हैं। इनके दो हाथ अञ्जलिमुद्रा में हैं।

'अग्निपुराण' में गरुड़ के आठ हाथों का उल्लेख है। मानसार ग्रन्थ में इन्हें तोते के समान नासिका वाला तथा आठ नागों से विभूषित भीषण आंखों वाला कहा गया है।

अमर कोष में गरुड़ के ९ नाम दिये गये हैं—

गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यो वैनतेयः खगेश्वरः।
नागान्तको विष्णुरथः सुपर्णः पन्नगाशनः॥

भगवान विष्णु के नाम आदित्य, सविता आदि हैं। गरुड़ का एक नाम सुपर्ण है। इससे मालूम होता है कि भगवान विष्णु सूर्य ही हैं जिनका वाहन सुपर्ण (किरण) है। भगवान विष्णु (सूर्य) सुपर्ण (किरण) पर आरूढ़ होकर जगत का भरण-पोषण करते हैं।

१. अधिक जानकारी के लिए 'प्रतिमा-विज्ञान' ग्रन्थ का अवलोकन करें।

विष्णु के क्रोध एवं ऐश्वर्य की चिन्ता छोड़कर उनपर बड़ी तेजी से कूद-कूद कर खुरों और सींगों से प्रहार करने लगा। भगवान विष्णु वृषभ के इन भयंकर प्रहारों को सहन न कर सके और कुछ ही क्षणों में घायल एवं चेतनाशून्य हो गये। पुनः सचेतन होने पर विष्णु ने वृषभ रूपधारी भगवान शिव की बहु प्रकार से वन्दना की—हे प्रभो! आप की माया से मैं मोहित हो गया। हे स्वामिन! अज्ञानतावश आपके साथ जो युद्ध किया, उसके लिए कृपया मुझे क्षमा करें। इसी प्रकार 'स्कन्द पुराण' में शिव का वृषभवाहन रूप वर्णित है—

वृषभ वाहन विश्वतोमुख सर्वतो रक्ष रक्ष।

वैदिक साहित्य में वृषभ और भगवान शंकर की चर्चा वैज्ञानिक ढंग से की गयी है:— वृषयमाणो वृषभ जिस प्रकार गौओं में वीर्य सेचन करता है, उसी प्रकार पृथ्वी में जल सेचन करने वाले सूर्य (त्रिकद्रुवेष) तीनों लोकों में अथवा तेज किरण, वायु द्वारा (सुतस्य) उत्पन्न जगत के (सोमं) अंश को (अवृगति) प्राप्त करता और (अपिबत) पान कर लेता है। (मघवा) मेघको जल ओर मेघ का अन्तर कर देने वाले (वज्र) विद्युत रूप तेजोमय वज्रं को लेता है। उपर्युक्त तथ्य से यही विदित होता है कि जगत का कल्याण कर्ता शिव, वही सूर्य (इन्द्र) है जो वृषम रूपी मेघ द्वारा गौ रूपी पृथ्वी का सिंचन कर रहा है। गौ के तीन रूप माने गये हैं—पृथ्वी, गौ, प्रजा पालन का कार्य। धारण करने से धर्म माना गया है। मेघ जल तत्व (वीर्य) द्वारा पृथ्वी में सेचन कर रहा है और सूर्य अपनी किरणों से शक्ति प्रदान कर उसका पालन कर रहा है। वैदिक साहित्य में प्राण के उग्र और शान्त, उष्ण और शीत ये दो रूप माने गये हैं। योग क्रिया के अनुसार "अशान्त को शान्त बनाना ही योग है।" जिनका नाम 'प्राणापान' या अग्नि सोम' है। 'अपान' उग्र का रूप है। इस सिद्धान्त का पौराणिक मतावलम्बियों ने वृष और महिष का नाम दिया है।

शिव का वृष देखने में सफेद वर्ण का है जिसमें धूप सहने की शक्ति है। इसी कारण योगेश्वर शिव को वृषवाहन कहा गया है क्योंकि उनमें 'काम को जीतने की शक्ति है। वृषभ और वृष-ये दोनों नाम मेघ से उत्पन्न विद्युत के ही हैं। वृष, वर्षण, वृष्टि, वर्षा, वृषभ, वर्षिता इन सभी शब्दों की धातु एक ही है। 'वृष सेचने, यानी वृष धातु का अर्थ सींचना है। "वर्षति सिञ्चति यः स वृषः "जो जल से पृथिवी को सींचे, उसे वृष कहते हैं। वृषभः प्रजां वर्षतीति रेत इति गा तद् वृष कर्म्मा वर्षणाद् वृषभः तस्यैण भवति॥ १. इस वाक्य से भी प्रमाणित होता है कि वृषभ वर्षा करने वाले को कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि महादेव (शंकर) ने अपना वाहन बैल (वृषभ) क्यों रखा? रुद्र अर्थात् वज्रदेव का वाहन वृषभ या वर्षा करने वाला मेघ है। यही पृथिवीस्थ वृषभ (बैल) वाहन होना है। इस तर्क की पुष्टि यास्काचार्य तथा सायणाचार्य ने भी की है।

लिङ्गरूप—कुछ लोग शिवलिंग को जननेन्द्रिय का प्रतीक मान लेते हैं किन्तु यह भ्रम है। विचारशील विद्वान और उद्भट मनीषियों के विचार इस प्रकार हैं—

आकाशं लिंगमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका।
आलयं सर्व देवानां लयना लिंग मुच्यते॥

१. अ० १। कं० ३६१६ विषण: ३।२२।

अर्थात् अणिमादि अष्ट गुण तथा समस्त देवता जिसमें शमन अथवा अवस्थान करते हैं, वही शिव हैं।

यह आकाश ही उसकी पीठिका है ऐसा मान कर इस आकाश में विलीन होने पर साधक परम सिद्धियों को प्राप्त होता है। पीठ स्थान पृथिवी मूलाधार है। इस मूलाधार या पृथिवी तत्व से आकाश तत्व पर्यन्त जीव भाव और देव भाव जब 'शून्ये विशति मानसे' यानी मन से प्राणी महाशून्य में विलीन होकर सर्व शून्य हो जाता है। इस अवस्था को ही श्मशान कहा गया है, क्योंकि फिर वह जीव नहीं रह जाता, न उसका कोई चिह्न ही रह जाता है।

त्र्यम्बक शिव :—

शिव को त्र्यम्बक कहा गया है अर्थात् उनके सूर्य, चन्द्र और अग्नि ये तीन नेत्र हैं। सूर्य प्राण शक्ति का दाता होने से प्राण मनस्वरूप है बुद्धि स्वरूप है। अतः जब साधना से साधन का और अग्नि प्राण शुद्ध हो जाता है और प्राण की शुद्धि से मन की शुद्धि होती है। तभी अन्तःकरण निर्मल होता है और अन्तःकरण की शुद्धि से प्रज्ञानेत्र खुलते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिसके प्रज्ञानेत्र स्वतः स्फुरित हैं वही त्र्यंबक शिव हैं। शिवलिंग नेत्र के मध्य वीर्य धारण करने से ज्योतिर्लिंग हुआ।

पुराण कथाओं में कई शिवलिंगों का वर्णन है। ब्रह्मलिंग अनाहत नामक लिंग के आधार में, विष्णु लिंग भ्रू मध्य में अज्ञान चक्र आधार में शिवलिंग की उपासना की गयी है। लिंग शब्द पर जन साधारण में शिवतत्व का ज्ञान न होने से पुराणों में वर्णित उपाख्यों के आधार पर भेद होना स्वाभाविक है, किन्तु विज्ञान ने शिवलिंग का रहस्य इस प्रकार बताया है। 'लिंग' का अर्थ चिन्ह होता है। अप् अर्थात् जलका प्रतीक शिव और लिंग में कोई भेद नहीं है। शिवके द्वारा समस्त वस्तु गम्य हैं। इस प्रकार शिव में लिंग तत्व है। शिवतत्व अन्य किसी में गम्य नहीं है क्योंकि शिव चेतना हैं। शिव स्वयं ज्योति स्वरूप हैं। स्वयं ज्ञाता या स्वगमक होने से लिंग स्वरूप हैं। गत्यर्थक 'लिंग' धातु से धिक् प्रत्यय से निष्पन्न लिंग शब्द का अर्थ 'लिंग्यति गमयति ज्ञाति है।

प्रलय काल में भगवान शिव रुद्र रूप में ताण्डव नृत्य करते हैं। उस समय उनका वाहन शव होता है। शिव की इस लीला पर 'मानस' में गोस्वामी तुलसीदास ने भी शिव की बरात का सुन्दर वर्णन करते हुए बैल की सवारी का उल्लेख किया है—

कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा।
चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं।
बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥

इससे पूर्व महाकवि विद्यापति ने 'मनाइनि' (पार्वती की माता) को संबोधित करते हुए शिव के योगी रूप का वर्णन किया है—

जोगिया मन भावइ हे मनाइनि।
आएल बसहा चढ़ि, विभूति लगाए हे।
मन मोर हरलनि डमरू बजाए हे॥

रुद्र :—

शिव के रुद्र रूप का वर्णन वेद पुराण और विभिन्न ग्रन्थों में बड़े विस्तार के साथ है—

यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग मिव बालकः ।
ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥१०॥

अर्थात् हे रुद्र ! जिस हेतु आप जन्म लेते ही रोदन करने लगे, इस हेतु प्रजाएं आपको रुद्र नाम से पुकारेंगी । यह आपका मुख्य नाम है । विष्णु पुराण के प्रथम अंश के आठवें अध्याय में एक रोचक कथा इस प्रकार है—अपने समान पुत्र की इच्छा वाले ब्रह्मा की गोंद में सुस्वर रुदन करता दौड़ता हुआ नीललोहित बालक उत्पन्न हुआ । उसको रोता हुआ देखकर ब्रह्मा ने कहा कि तू क्यों रोता है ? उसने रोते हुए कहा कि मेरा नाम संस्कार कीजिये । ब्रह्मा ने कहा—तेरा नाम 'रुद्र' होगा । तुम रुदन बन्द करो । धैर्य धारण करो । परन्तु वह बालक चुप नहीं हुआ । ब्रह्मा ने उसके सात नाम और रखे—(१) भव (२) शर्व (३) महेशान (४) पशुपति (५) भीम (६) उग्र और (७) महादेव ।

यदि हम कथा के भाव पर ध्यान दें तो हमें ज्ञात होगा कि प्राचीन आचार्यों ने वैज्ञानिक ढंग से इसमें वज्र या विद्युत की उत्पत्ति का निरूपण किया है । भागवत ग्रन्थ में आये हुए शब्दों पर ध्यान दें ।

यहाँ 'प्रजापति' शब्द का प्रयोग किया गया है, जो मेघ, वायु, अग्नि सूर्य के लिए प्रयुक्त होता है । यहाँ वायु और मेघ प्रजापति हैं । जब बड़े वेग से वायु चलना आरम्भ होता है, उस समय मेघनाद होने लगता है । उस गर्जन से प्राण कम्पायमान हो उठता है । क्रोधाग्नि स्वरूप बिजली इधर-उधर कौंधने लगती है । इस प्रकार वायु के कारण जब पर्जन्य भगवान बड़े क्रोध में जलने लगते हैं, उस समय रोते हुए और जगत को रुलाते हु मेघ से वज्रदेव बड़ी तीक्ष्णता से दौड़ते हैं । ये लाल होते हैं और नीले-नीले मेघ इनके चतुर्दिक व्याप्त रहते हैं, जिससे ये नील वर्ण दीखते हैं । इसीसे वज्र को नीललोहित कहते हैं । यह वज्र रोता और रुलाता हुआ दौड़ता है । अतः इसका नाम 'रुद्र' है । रुद् द्रवति धावति इति रुद्रः । रोते हुए दौड़ने वाले को रुद्र कहते हैं ।

विष्णु पुराण में महादेव की जन्म कथा से भी ज्ञात होता है कि वज्र देव और महादेव दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची हैं । इसी प्रकार की कथा का आशय अमर कोश, शतपथ ब्राह्मण, निघण्टु आदि ग्रन्थों में है ।

महादेव का निवास स्थान पर्वत :—

पुराणों में भगवान रुद्र (महादेव) का स्थान पर्वत है । जैसे विष्णु का निवास क्षीर सागर है वैसे ही महादेव का कैलास पर्वत है । इससे शंकर को गिरीश कहा जाता है । गिरीश का निवास स्थान कैलास पर्वत क्यों है, यह भी एक वैज्ञानिक रहस्य है । वैदिक भाषा में 'मेघ' और 'पर्वत' सूचक बहुत से शब्द समान ही हैं । पर्वत दोनों अर्थों में समान रीति से वेदों में प्रयुक्त हुए हैं । परन्तु आजकल पर्वत, गिरि आदि शब्द मेघ के अर्थ में कदापि

प्रयुक्त नहीं होते। अब यहाँ इस सशय का निवारण हो जाता है कि जो देवता जैसा है, उसके लिए वैसा ही स्थान भी है। हिमालय पर्वत की कैलास चोटी उत्तराखण्ड में है जो आर्यों का मूल स्थान है तथा प्राकृतिक रमणीयता और गंगा की उद्‌गम स्थली है। इस कथा की कल्पना, रूपक की संयोजना एवं अलंकरण विधि अत्यन्त सुन्दर है।

शंकर का विषपान :—

पुराणों में प्रसिद्ध है कि सृष्टि के आरम्भ में असुरों के द्वारा समुद्र मंथन होने पर उससे प्राप्त अमृत तो देवताओं ने पान कर लिया। किन्तु विष का पान कौन करे? यह प्रश्न उठा। दैत्यों ने इसे पीने से इनकार कर दिया परन्तु संसार के कल्याणार्थ सदाशिव शंकर ने उसे सहर्ष ग्रहण कर लिया। उन्होंने विष को अपने कंठ में रख लिया। तब से शिव का नाम नीलकंठ हो गया। इस कथा के वैज्ञानिक रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए वैदिक विद्वान पं० शिव शंकर शर्मा ने अपने 'वेदतत्त्व प्रकाश' में लिखा है कि 'समुद्र मन्थन में भाग लेने वाले देवता सूर्य की किरणें हैं तथा दैत्यगण (असुर) आकाशी मेघ हैं। ये दोनों मिलकर समुद्र अर्थात् आकाश का मन्थन करते हैं।

जैसे दूध जमकर जब दही हो जाता है तब उसका मंथन करते हैं अथवा दूध को ही मथ कर घी निकाल लेते है। वैसे ही सूर्य की किरणों द्वारा पृथ्वी पर से जब थोडा-थोड़ा पानी आकाश में इधर-उधर दौड़ने लगता है, तो उस समय मानो सूर्य किरण और असुरगण (मेघ देवता) समुद्र (आकाश) का मंथन करते हैं। इस प्रकार के मंथन से अमृत निकलता है। यहां 'अमृत' जल ही है। वेदों में इसके अनेक उदाहरण हैं। 'अमर कोश' में जल के अनेक नामों के साथ एक नाम 'अमृत' भी है।

यहां विष्णु (सूर्य) का विद्युत रूपी स्त्री रूप धारण करना, असुरों (मेघ गणों) को छिन्न-भिन्न करके पानी बरसा देना, यही विष्णु (सूर्य) का मोहिनी रूप धारण करना है। यहाँ पर जानने की बात यह है कि मेघों में विद्युत आदि को उत्पत्ति का कारण सूर्य ही है। सूर्य के ताप से ही वायु चलता है। वायु के आधार पर मेघ भ्रमण करता है। इस मेघ के संघर्षण से विद्युत उत्पन्न होता है। अतः मेघ का कर्त्ता सूर्यदेव ही हैं।

इसको इस प्रकार से देखें कि जब सूर्य की उष्णता के कारण मेघ की घटा छाती है और उसके अत्यन्त सुन्दर चित्रों के बीच उसके रूप दीखते हैं, तो इसी सौन्दर्य को हम विष्णु (सूर्य) की शक्ति या उनका मोहिनी रूप कहते हैं।

विषपान रहस्य—

शंकर के हलाहल पान करने की कथा के पीछे भी बड़ा रहस्य है। वर्षा के आरम्भ काल में भयंकर गर्मी उत्पन्न होती है, वायु का बहना बन्द हो जाता है, जिससे सभी प्राणी व्यग्र हो छटपटाने लगते हैं तथा नाना प्रकार के रोगों के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। यहां भीषण ताप-रूपी विष को विद्युत का अर्थात पूर्ण वर्षा का होना ही 'विद्युत' नामक रुद्र द्वारा विष का ग्रहण करना ही शंकर का विष पायीरूपक है।

इसी प्रकार उच्चैःश्रवा अश्व तथा ऐरावत गज का समुद्र से उत्पन्न होनाभी रूपक ही है। वर्षा ऋतु में उत्पन्न वायु का नाम उच्चैः श्रवा है और रावत नाम मेघ का है जिस पर वर्षा का राजा इन्द्र सवार होता है।

रुद्र-वाहन शव—

प्रलयकालीन शिव के ताण्डव नृत्य के समय उनका वाहन शव ही होता है।

स्थिरे भिरङ्गै रिति मंत्रस्य—
गृत्समद ऋषि स्त्रिष्टु। छन्दः
रुद्रो देवता रुद्रस्य रूपज्ञार्थे विनियोगः [1]

रुद्र निर्मल प्रकाशित नक्षत्रमय अलंकारों से अति सुन्दर शोभा को प्राप्त होता है। वह उमा के नित्य अनन्त ज्ञान रूप अवयवों से युक्त है। वह इन समस्त भुवनों का उत्पादक, संरक्षक, संहारकर्त्ता तथा स्वामी है। अनन्त शक्तिमय ईश्वर रुद्र से भिन्न नहीं है। इसलिए रुद्र नित्य ज्ञान रूपी है और अन्धकारका नाश करता है। उसके तीन सूत्रों द्वारा तीनों तापों से मुक्त हो जब मांस के पिण्ड से शिव शक्ति पृथक हो जाती है तो केवल शव ही रह जाता है। रुद्र शक्ति के ऊपर आ जाने से भूमि श्मशान के रूप में हो जाती है। श्मशानका देवता शव पर नृत्य करता है। यही रुद्र केशव रूपी वाहन की कल्पना है।

एकादश रुद्र—

पुराणों में एकादश रुद्र का वर्णन है। ये हैं—(१) प्राण (२) अपान (३) व्यान (४) समान (५) उदान (६) नाग (७) कूर्म (८) कृकल (९) देव (१०) धनञ्जय (११) आत्म ज्ञान। इनमें दस साधारण रुद्र शरीर यन्त्र का संचालन करता है और ग्यारहवां आत्मज्ञान है जो इन सबको वश में रखता है। यदि अज्ञान के वशीभूत होकर ये अनियंत्रित चलने लगें तो संहारक का रूप हो जाता है। जो मिताहार, विहार द्वारा संसार का कल्याण करने वाले सदा शिव की संहार-शक्ति को देखेंगे तो उनके तन पर वस्त्र नहीं है। उनसे कोई मिलने के लिए आता है तो वे लंगोटी के स्थान पर सांप को लपेट लेते हैं। वे अपने अंगों में भभूत लगाये रहते हैं। उनके गले में अस्थि-पञ्जर है। उनका निवास स्थान कंकालों से भरा पड़ा है। यही है रुद्र का श्मशान-रूप।

शिव को श्मशान क्यों प्रिय है ?

श्मशान में मानव शरीर या पार्थिव शरीर जलता है, नव पृथ्वी संहारक है वे उन बन्धनों का संहार करते हैं जो प्रलय की आत्मा को बाँधे रहते हैं। श्मशान क्या है और यहाँ जहाड़ माया मोह से रहित हो गया है। जहाँ उनका अहंकार रूपी माया की भावनाएँ जलकर भस्म हो जाती हैं।

भगवान शंकर

शंकर शब्द के साथ भगवान शब्द लगाने से साधारण जन (भग) शब्द का अर्थ स्त्री की योनि के रूप में लगा लेते हैं। किन्तु यदि गहराई से सोचा जाय तो भग सृष्टि का प्रतीक है। योनि तथा लिंग के संयोग से ही सृष्टि होती है। योनि आकृति रूप अर्घ में स्थापित शिव लिंग की प्रतिमा समस्त विश्व का प्रतीक है। किन्तु लिंग शब्द का अर्थ यहीं तक सीमित नहीं है। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री ज्ञान और वैराग्य इन छ का नाम भग है। इसी प्रकार समस्तभूतगण-व्रम् अखिल भूतात्मा में निवास करते हैं। अतः वह अव्यय परमात्मा में ही वकार

---

१. ऋग्वेद २-३३।९।

का अर्थ है। यही महान (भगवान) शब्द परब्रह्मस्वरूप श्री वासुदेव का वाचक है जो समस्त प्राणियों की उत्पत्ति और लय के कर्त्ता हैं। वृषभ के अतिरिक्त शिव का वाहन सिंह भी है। इसकी कथा महाभारत के वन पर्व में है जिसमें महादेव को सिंह द्वारा खींचते हुए रथ पर आरूढ़ दिखाया गया है। देवासुर संग्राम में सेनापति पद पर स्कन्द का अभिषेक हो चुका, तब सर्व शक्तिमान महादेव पार्वती को साथ लेकर प्रसन्नता पूर्वक सूर्य के समान चमकीले रथ पर बैठ कर भद्रवन की ओर चले। महादेव के रथ में सफेद रंग के हजार सिंह लगे हुए थे। काल के द्वारा निर्मित उस रथ को लेकर वे सिंह अपने घोर गर्जन से जगत को डराते हुए आकाश मार्ग से गये। किन्तु इस कथा में भी सूर्य शक्ति है और वृषभ ही शंकर का वाहन है जो सूर्य राशियों के रूप में है।

शिव मस्तक पर सर्प का होना :—शिवलिंग से लिपटा हुआ सर्प का रहस्य इस प्रकार है। यौगिक दृष्टि से सर्प षट चक्र कुण्डलिनी शक्ति से नीचे यन्त्र के मध्य में स्वयम्भू लिंग है जिसके चारों ओर साढ़े तीन फेरे में लिपटी हुई सर्पाकृति, जो अपनी पूँछ को मुख में दबाये हुए है, कुण्डलिनी है।

भाल चन्द्र :—भगवान शिव के भाल पर चन्द्रमा का सदैव विद्यमान रहना यह प्रमाणित करता है कि जगके कल्याण हेतु उन्होंने हलाहल विष का पान कर लिया। परन्तु वह विष कण्ठ में ही क्यों रुक गया ? वह उदर में क्यों नहीं उतर सका ? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि उदर (पेट) में विष के प्रवेश से समूचे संसार का विनाश हो जाता। शिव के कण्ठ में विष का रहना ही मंगलकारी सिद्ध हुआ। इसी प्रकार उनके भाल पर चन्द्रमा का होना विश्वहित के लिए अमृत वर्षा करने का प्रतीक है क्योंकि चन्द्रमा और सूर्य के द्वारा संसार का पालन पोषण हो रहा है।

देवराज इन्द्र

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१

अर्थात् हे इन्द्र (वृद्धश्रवा) हमारा कल्याण हो। हे पूषा देवता, हमारे लिए शुभ हो तथा बृहस्पति रूप हमारे लिए शुभकारक हो। हम स्वस्थ रहें। सुखी, धनधान्य से सम्पन्न रहें। पुराण कथाओं में इन्द्र देवताओं के राजा हैं—जिनसे हम सदैव कल्याण की कामना करते हैं। प्रसिद्ध एवं प्रामाणिक कोशग्रन्थ 'अमर कोष' में इन्द्र के पैंतीस नाम दिये गये हैं—

१. इन्द्र २. मरुत्वान् ३. मघवन् ४. बिडौजस् ५. पाकशासन ६. वृद्धश्रवा ७. शुनासीर ८. पुरुहूत ९. पुरन्दर १०. जिष्णु ११. लेखर्षभ १२. शक्र १३. शतमन्यु १४. दिवस्पति १५. सुत्रामन् १६. गोत्रभिद् १७. वज्रिन् १८. वासव १९. वृत्रहन् २०. वृषन् २१. वास्तोष्पति २२. सुरपति २३. बलाराति २४. शचीपति २५. जम्भभेदिन् २६. हरिहय २७. स्वाराट् २८. नमुचिसूदन २९. संक्रन्दन ३०. दुश्च्यवन ३१. तुराषाट् ३२. मेघवाहन ३३. आखण्डल ३४. सहस्राक्ष ३५. ऋभुक्षन्। इन्द्र पत्नी के तीन नाम हैं-(१) पुलोमजा (२) इन्द्राणी (३) शची।

इन्द्र की नगरी का नाम अमरावती है। इन्द्र के घोड़े का नाम उच्चैःश्रवा है। इन्द्र के सारथी का नाम मातलि है। इन्द्र के उपवन का नाम नन्दन, भवन का नाम वैजयन्त, पुत्र का नाम–जयन्त है। इन्द्र के हाथी के चार नाम हैं-(१) ऐरावत (२) अभ्रमातंग (३) ऐरावण (४) अभ्रमुवल्लभ। पुराण साहित्य में इन्द्र के सम्बन्ध में अनेक उपाख्यान हैं जिन पर इतने रूपकात्मक विशेषण लदे हैं कि उनका रहस्य जानना सहज नहीं।

वैदिक ग्रन्थों में इन्द्र की अत्यधिक प्रधानता है। इन्द्र ही सूर्य और विष्णु आदि अनेक नामों से पूजे गये हैं।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्
देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥

हे मनुष्यो, जिसने उत्पन्न होते ही अपने को प्रथम मनस्वी के रूप में प्रतिष्ठित किया, जिसने यज्ञादि कार्यों से देवताओं का संरक्षण किया, जिसकी शारीरिक शक्ति से द्यावापृथिवी प्रकम्पित है और जो महान सैनिक बल से युक्त है, वही इन्द्र है।

पुराण कथाओं में देवासुर संग्राम का वर्णन आया है जिसके वैज्ञानिक रहस्य का वर्णन यास्काचार्य ने अपने निरुक्त में किया है। प्राण ही देव और असुर है। प्राण की भली-बुरी वृत्तियाँ क्रमशः दैवी और आसुरी कहलाती हैं।

---

१. यजुर्वेद सं० २५।१९।

देवाश्च वा असुराश्च
प्रजापतेर्द्वया पुत्रा आसन।

प्राण प्रजापति है। उसी के रूप देवासुर हैं। जब दैवी वृत्तियों की विजय होती है, तब इन्द्र स्वर्गका अधिपति रहता है। असुरों की विजय से इन्द्र स्वर्ग से च्युत होता है-जिसका भाव आत्म-विवेक का लोप हो जाना है। इस प्रसंग को शतपथ ब्राह्मण (११।१।१६) में आलंकारिक रूप में कहा गया है कि प्रजापति ने अपने शरीर से देवों और असुरो को बनाया। देवों के बनाने से प्रकाश और असुरों को बनाने से अन्धकार हो गया। यहाँ अन्धकारका होना असुरों का बल बढ़ना है। दैवी शक्ति बढ़ने से प्रकाश होता है। अतः असुरों का बल रात्रि और देवों का दिन है। तैत्तरीय संहिता में कहा गया है—सूर्य-किरण ससक्त देवता ही रूपों का उत्पादक हैं।

ऋग्वेद भाष्य प्रथम में इन्द्र की प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि—हे इन्द्र ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, भूमि और राष्ट्र का पालन करनेवाले राजा, शक्तिशाली न्यायशील, मेघनाद (गर्जन) करते हुए, निरन्तर श्वास लेने वाला, घोड़ों से (धनादि) अनेक प्रकार के ऐश्वर्यो वाले, मेरी निरन्तर विजय करें।

वेद में इन्द्र को सूर्य और अग्नि दो नामों से कहा गया है। अर्थात् हम सूर्य रूप में प्रकाश अर्थात् प्रकाश को हम सूर्य के रूप में देखते हैं। ताप शक्ति को हम अग्नि के रूप में देखते हैं तथा इन्द्रको हम देवताओं के राजा के रूप में देखते हैं। इस प्रकार देवराज इन्द्र परात्पर ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं।

इन्द्र का वाहन ऐरावत :—देवराज इन्द्र का वाहन ऐरावत हस्ती कहा जाता है 'इन्द्रो वज्री गजारूढ़:'। ऐरावत का वर्ण उज्ज्वल है। आकाश में वर्षा करने वाले मेघ (बादल) का गर्जन हस्ती के समान है। अध्यात्म तथा यौगिक दृष्टि से षट्चक्र और कुण्डलिनी—शक्ति में बीज लं का वाहन है। मूलाधार चक्र मानवशरीर में रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले भाग के मध्य है। इस चक्र का जो कमल है वह रक्तवर्ण का है और उसमें चार दल हैं। उन दलों पर वं, शं, षं और सं अक्षरों की स्थिति मानी गयी है। यह यन्त्र पृथ्वी के बीजतत्व का द्योतक है और बीज लं है। इस बीज का वाहन ऐरावत हस्ती है।

महर्षि पाणिनि तथा उपनिषदों के वचनानुसार "इन्द्रस्य लिंगमिन्द्रियम्" इन्द्र वह है जिसके कर्तृत्व के साधन इन्द्रिय हैं। शब्द, ब्रह्म, जीव, राजा, विद्युत आदि भी इन्द्र के नाम हैं।

इन्द्रियाँ ही शरीर में देवी की प्रतिनिधि हैं। इन्द्र की शक्ति से ही बल-सम्पन्न होकर ये इन्द्रियाँ कहलाती हैं। यह इन्द्र आत्मा है जो देवों पर शासन करता है। उस इन्द्र के साम्राज्य में देवता निर्विघ्न बसते हैं। वह देवाधिदेव महादेव या सुरपति है।

■

अग्निदेव

प्राचीन काल से आज तक भारतीय संस्कृति में अग्निदेव की उपासना सभी सम्प्रदायों में किसी न किसी रूप में अवश्य होती रही है। हमारे सम्पूर्ण संस्कार अग्नि से सम्पन्न होते हैं। अग्नि की कृपा से ही प्रत्येक प्राणी विद्यमान है।

अग्नि ही इन्द्र है, अग्नि ही सूर्य है, अग्नि ही प्राणवायु है, अग्नि ही रुद्र है। पृथ्वी और स्वर्ग के देवों में अग्नि ही मुख्य देव हैं जो यज्ञीय अग्नि का प्रतिनिधि रूप है। इन्द्र के अनन्तर अग्नि ही सर्वमान्य देवता हैं जिनकी स्तुति वेदों में स्थान-स्थान पर की गयी है।

त्वं नो अग्ने महोभिः
पाहि विश्वस्या अरातेः।
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥[1]

अर्थात् 'हे परमेश्वर ! आप अपने तेज से सभी दिशाओं में रहने वाले अशान्तिप्रद कारणों से तथा जीवन की क्षणभंगुरता से मुक्त कर द्वेष करने वाले मनुष्यों से हमारी रक्षा करें।"

अग्नि के दो रूप हैं—घोरातनु और अघोरातनु। अर्थात् अपने भयंकर घोर रूप से वह संसार का संहार करने में समर्थ है। परन्तु उसके अघोररूप के दो पुत्र हुए। ब्राह्मण लोग जिस अग्नि को अभिमानी, आहवनीय, हव्यवाहन कहते हैं, उसी अग्नि से सोलह नदियों की उत्पत्ति हुई। वे नदियाँ हैं—कावेरी, कृष्णा, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौषिकी, शतद्रू, सरयू, सीता, सरस्वती, प्रह्लादिनी। इस प्रकार वायुपुराण में इनका विस्तृत वर्णन है। वायुपुराण में कृशानु नामक अग्नि प्रधान सम्राट माना गया है। इसमें भी उसके आठ भेद हैं। ब्रह्मज्योतिवसु अग्नि तथा अजैकपाद अग्नि पूजनीय है। यह अग्निशाला में स्थापित किया जाता है।

अग्नि में ही संसार के पालन की शक्ति विद्यमान है। यदि अग्नि का निवास भूतल पर न हो तो क्या एक क्षण के लिए भी प्राणियों में प्राण का संचार हो सकता है? आज के वैज्ञानिक युग में प्रत्यक्ष रूप से अग्नि का प्रभाव दिखाई पड़ रहा है। अग्नि सर्वत्र है। जल, स्थल, नभ, जड़, चेतन आदि सब में।

पुराणों में अग्नि वंश का वर्णन—वायु पुराण के उनतीसवें अध्याय में अग्नि वंश की उत्पत्ति ब्रह्मा के मानसपुत्र के रूप में है। ब्रह्मा के तीन मानस पुत्र हुए - पावक, पावमान (या पवमान) और शुचि। शुचि को कहीं-कहीं सौरमी कहा गया है। इन तीनों अग्नि की उत्पत्ति का भेद इस प्रकार है।

मन्थन से उत्पन्न अग्नि का नाम पावमान है तथा सूर्य-किरण से उत्पन्न अग्नि का नाम शुचि है। इसी प्रकार वैद्युत अग्नि का नाम पावक है।

---

१. सामवेद संहिता—पूर्वार्चिक आग्नेय काण्डम्, अध्याय १, खण्ड १।

अग्निदेव
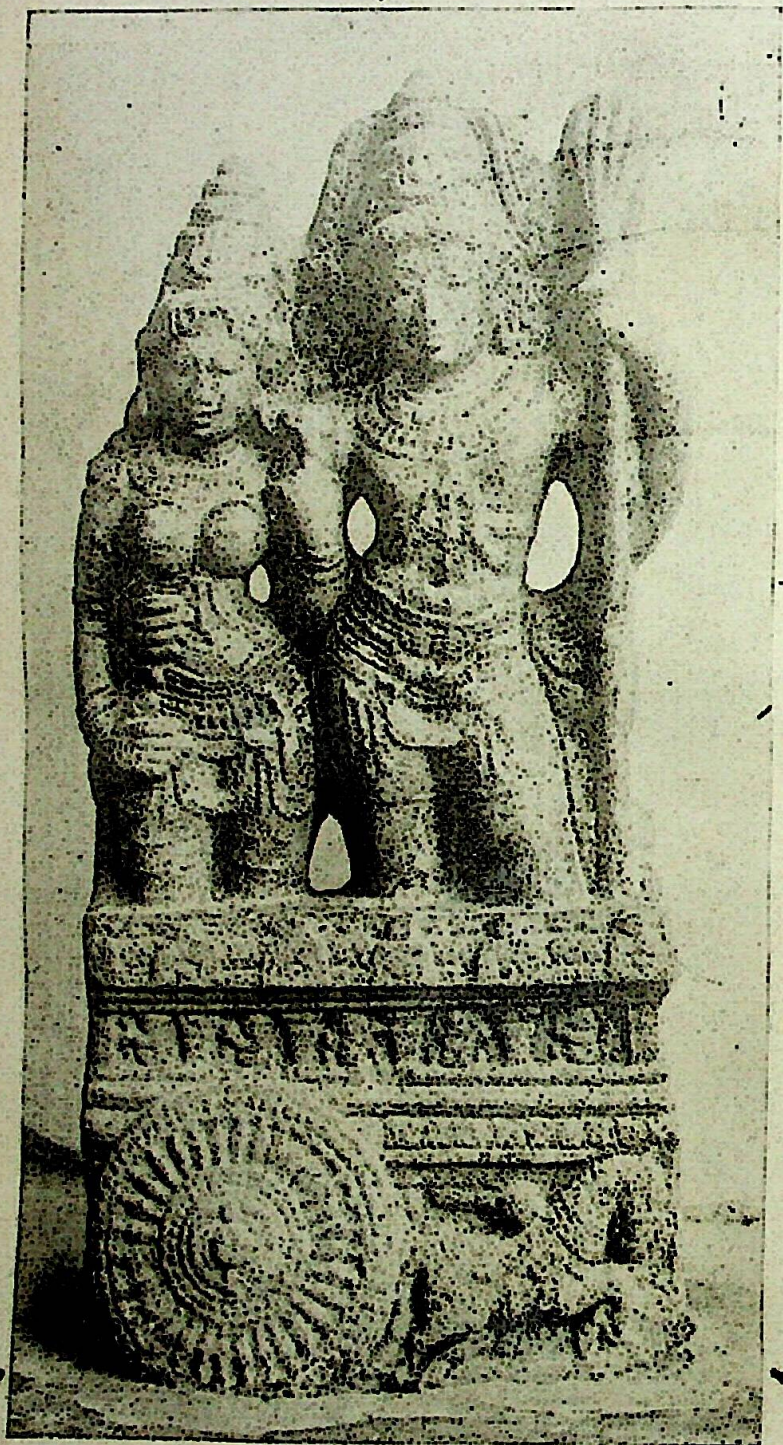
कामदेव और रती

अमेरिकन इन्स्टीटयूट इण्डियन स्टडीज रामनगर वाराणसी के सौजन्य से

इस अग्नि वंश में पावमान को कव्यवाहक नामक पुत्र हुआ। पावक को सदरक्ष नामक तथा शुचि को हव्यवाह नामक पुत्र हुए। यही देवताओं के तीन अग्नि हैं। इन के पुत्र-पौत्रादिक ४९ हैं जिनके पृथक-पृथक नाम हैं। ब्रह्मा के सुत लौकिकाग्नि वैद्युत हुए जिनके ब्रह्मौदनाग्नि पुत्र हुए और इन्हीं का नाम भरत हुआ। पुष्करोदधि के मन्थन काल में अमृत निकलने के बाद अथर्वण अग्नि की उत्पत्ति हुई। यही अथर्वा लौकिकाग्नि हैं जिनके पुत्र का नाम दध्यङ्ङ है।

विद्वानों ने जिस मन्थन से निकले अग्नि को पावमान कहा है उस अग्नि के दो पुत्र हुए। उनमें पहला आहवनीय अग्नि (हव्यवाहन) या शंस्य अग्नि तथा दूसरा शुक्राग्नि है। शस्य को सभ्य और आवसथ्य नामक दो पुत्र हुए। इस प्रकार अग्नि पृथ्वी पर विष्णु, मित्र तथा अर्यमा का दूत है। अग्नि की ही कृपा से इन्द्र ने जल निरोधक वृत्र का हनन किया तथा पृथ्वी आकाश में स्थित प्राणियों के निवास के प्रसारित किया। वैश्वानर अग्नि प्राणियों में क्षुधारूप में स्थित अग्नि है। वही मेघों को भेद कर जल की वृष्टि कराता है। अग्नि ही वर्षा तथा नदियों के जलप्रवाह का कारण है। अतः अग्नि ही हमारा रक्षक और देवताओं के लिए माता समान है।

अग्निपुराण में अग्नि रूप :— भगवान् अग्निदेव के स्वरूप की कल्पना इस प्रकार की गयी है—अग्निदेव के सारे अंग मानव सदृश हैं। उनके दो मुख हैं, मस्तकपर जटा तथा अजा के सींगों की भांति दो सींगें हैं। मुख से अग्नि की ज्वाला निकल रही है। इनकी सात भुजाएं हैं जिनमें एक में पंखा, दूसरे में अन्नपात्र है। इस पुराण में हवन आदि विधि में देवालय स्थापन, प्रतिमा निर्माण, उपासना, पूजन तथा काव्य मीमांसा आदि का वर्णन है।

पुराण साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि भगवान् अग्निदेव को विष्णु का ही एक रूप माना गया है। अग्निदेव द्वारा महर्षि वसिष्ठ के प्रति उपदिष्ट होने से अग्निदेव ब्रह्म रूप हैं। अर्थात् समस्त विश्व की संचालिका शक्ति का ही नाम अग्नि है।

यहां अग्नि के विभिन्न प्रकार से उत्पत्ति एवं उनके रूपों के अलंकारिक रूप हैं। अग्नि की उत्पत्ति सूर्य द्वारा होने से सूर्यवंशी क्षत्रियों की एक शाखा अग्नि वंश के नाम से प्रसिद्ध है।

उपनिषदों में अग्निवंश का वर्णन :— उपनिषदों में अग्नि का वर्णन सविता के नाम से मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद के ५ वें अध्याय में श्वेतकेतु और प्रवाहण के प्रश्नों के उत्तर में गौतम मुनि ने श्वेतकेतु को उपदेश देते हुए अग्नि की उपासना करने के लिए कहा। उपनिषद में (अग्नि) देवता के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है।

द्युलोक के अग्नि का रूप :— गौतम मुनि को सम्बोधित कर कहा गया है कि हे गौतम ! यह प्रसिद्ध द्युलोक ही अग्नि है। उसका आदित्य ही समिधा है, किरणें धूम्र हैं, दिन ज्वाला है, चन्द्रमा अंगार है और नक्षत्र विस्फुलिंग (चिनगारियां) हैं। इस द्युलोक के अग्नि में देवगण श्रद्धा का हवन करते हैं। इस आहुति से सोम राजा की उत्पत्ति होती है।

पर्जन्य अग्नि के रूप में उपासना :— हे गौतम ! पर्जन्य ही अग्नि है; वायु ही उसकी समिधा, आकाश धूम्र, रश्मि ज्वाला, दिशाएं अंगार तथा अवान्तर दिशाएं विस्फुलिंग हैं। इस अग्नि में देवतागण वर्षा का हवन करते हैं। इस हवन या आहुति से अन्न होता है।

पुरुष की अग्नि रूप में उपासना :—हे गौतम ! पुरुष ही अग्नि है, वायु ही उसकी समिधा, आकाश धूम्र, रात्रि ज्वाला, चक्षु अंगारे और श्रोत विस्फुलिंग हैं। इस अग्नि में देवता-गण अग्नि का हवन करते हैं। इसी आहुति से वीर्य उत्पन्न होता है।

स्त्री की अग्नि रूप में उपासना :—गौतम ! स्त्री ही अग्नि है, उसका उपस्थ ही समिधा है, पुरुष जो उप मन्त्रण करता है वह धूम्र है, योनि ज्वाला है तथा जो भीतर की ओर प्रवेश करता है वह अंगारा है और उससे जो सुख होता है वह विस्फुलिंग है। इस अग्नि में देवतागण वीर्य का हवन करते हैं तथा इसी आहुति से गर्भ सम्पन्न होता है।

पाँचवीं आहुति से पुरुष की उत्पत्ति : इस प्रकार पाँचवीं आहुति के दिये जाने पर आप 'पुरुष' शब्दवाची होते हैं। वह जरायु से आवृत्त हुआ गर्भ दस या नौ महीने अथवा जब तक पूर्णांग नहीं होता तब तक माता की कुक्षि के भीतर ही शयन करने के अनन्तर फिर उत्पन्न होता है। इस प्रकार उत्पन्न होने पर वह आयुपर्यन्त जीवित रहता है, फिर प्रवेश करने पर अपने कर्मवश परलोक में उपस्थित हुए उस जीव को अग्नि के पास ही ले जाते हैं जहाँ से वह आया था और जिससे उत्पन्न हुआ था।

जीवों की त्रिविध गति :—वे जो इस प्रकार जानते हैं तथा वे जो वन में श्रद्धा और तप से इनकी उपासना करते हैं (प्राण प्रयाण के अनन्तर) वे अर्चि अभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं। अर्चि अभिमानी देवताओं से दिवसाभिमानी देवताओं को, दिवसाभिमानियों से शुक्लपक्ष अभिमानी देवताओं को, शुक्लपक्ष अभिमानियों से (जिन छः महीनों में सूर्य उत्तर की ओर जाता है उन छः महीनों को शुक्ल पक्ष कहा जाता है) संवत्सर को, संवत्सर के आदित्य से चन्द्रमा को और चन्द्रमा से विद्युत को प्राप्त होते हैं। वहाँ एक अमानव पुरुष है। वह उनको ब्रह्म की प्राप्ति कराता है। यह देवयान मार्ग है। जो गृहस्थ लोग ग्राम में पूर्त्त और दत्त ऐसी दो उपासना करते हैं वे धूम्र को प्राप्त होते हैं।

चंडाग्नि :—चंडाग्नि योगसाधना का ही एक नाम है। वज्रयोग में पवन-विरोध के उपरान्त अवधूतमार्ग में इसको प्रज्वलित करने की क्रिया का विधान है। यह चण्डाग्नि ही समस्त क्लेश और वासनाओं को भस्म कर देती है। शैव उपासना पद्धति में इसको ब्रह्माग्नि कहते हैं। इस अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए नौ इन्द्रियों का पवनबन्ध द्वारा बन्द कर केवल दसवें ब्रह्मरन्ध्र अथवा वैरोचन द्वार को उद्घाटित करना पड़ता है।

अग्निवाहन मेष :—योग की दृष्टि से मणिपूरक चक्र के दस दल हैं जिनका स्थान नाभि है। उसका वर्ण नील है। लोक स्वः है। दलों के अक्षर डं-से-फं तक, नाम तत्व अग्नि है। बीज रं है। बीज का वाहन मेष है। गुण रूप है। इस प्रकार रंकार बीज अग्नि है।

अज (छागल) :—अग्नि का वाहन अज प्रतीकका कारण अज के मस्तक में तापमान की अधिकता तथा इस पशु में रक्त की अधिकता होती है। 'शतपथ' के अनुसार कुमार (स्कन्द) का पाँचवाँ नाम अज है।

सूर्य का वाहन अश्व

ॐ सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा[1]।
ॐ सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा[2]।

ज्योति और वर्च—ये सूर्य के दो रूप हैं। सूर्य की प्रातःकालीन ज्योति (प्राण) अपने वर्च (अपान) से रहित नहीं रह सकती। ज्योति और वर्च दोनों दो होते हुए भी एक हैं और एक ही सूर्य प्रातःकाल में भी ज्योति+वर्च के रूप में प्रकट होता है।

सूर्य = { ज्योति, वर्च }   ज्योति = वर्च

विष्णु पुराण में भी सूर्य के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा है—

हयाश्च सप्तच्छन्दांसि तेषां नामानि मे शृणु।
गायत्री च बृहत्युष्णिग्जगती त्रिष्टुबेव च॥
अनुष्टुप्पङ्क्तिरित्युक्ता छन्दांसि हरयो रवेः।
चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वतः॥[3]॥

संसार के समस्त सुख तथा ऐश्वर्य को देने वाला ग्रहों का स्वामी भगवान् सूर्य को माना गया है। सूर्य की गति बड़ी ही वेगवान है। कुलाल चक्र (कुम्हार के चाक) के सिरे पर घूमते हुए जीव के समान भ्रमण करता हुआ यह सूर्य पृथ्वी के तीनों भागों का अतिक्रमण कर एक दिन और एक रात्रि करता है। उत्तरायण में सूर्य की गति रात्रिकाल में शीघ्र तथा दिन में मन्द है। दक्षिणायन में उसकी गति इसके विपरीत होती है। सूर्य विष्णु भगवान् का अतिश्रेष्ठ अंश और विकार रहित ज्योतिः स्वरूप है। आरोह और अवरोह के द्वारा सूर्य की एक वर्ष में जितनी गति है उस सम्पूर्ण मार्ग की दोनों काष्ठाओं का अन्तर एक सौ अस्सी (१८०) मण्डल हैं। सूर्य का रथ (प्रतिमास) भिन्न भिन्न आदित्य के, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, सर्प आदि से अधिष्ठित होता है। विष्णु भगवान् की शक्ति से तेजोमय हुए ये सात-सात गण एक-एक मास तक सूर्य मण्डल में रहते हैं। सूर्य सात गणों में से ही एक है, तथापि उनमें प्रधान होने से उनकी विशेषता है। भगवान् विष्णु की जो सर्वशक्तिमय ऋक् यजुः साम नाम की पराशक्ति है वह वेदत्रयी ही सूर्य को ताप प्रदान करती है। दिन और रात्रि के कारणस्वरूप पितृगण, देवतागण और वे मनुष्यों को सदा तृप्त करते हुए घूमते रहते हैं। सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी से जितना जल खींचता है उसको सब प्राणियों की पुष्टि और अन्न की वृद्धि के लिए बरसा देता है। सूर्य ग्रहों के राजा हैं। भगवान् सूर्य का जवाकुसुम के समान रक्तवर्ण है। उनके दोनों हाथों में कमल हैं। सिन्दूर के समान गेरुवा वस्त्र, आभूषण और माला धारण किये हुए हैं। भगवान् सूर्य का सारथी अरुण है। सात घोड़ों के रथ पर आरूढ़ होकर वे सुमेरु पर्वत की

---

१. यजुः ३।९। २. यजुः ३।९।
३. श्रीविष्णुपुराण द्वि० अध्याय ८।

प्रदक्षिणा करते रहते हैं। सुमेरु पर्वत समस्त द्वीप और वर्षों की उत्तर दिशा में एक ओर दिन और दूसरी ओर रात रहती है। दिन के समय अग्नि का तेज सूर्य में प्रविष्ट हो जाता है अतः अग्नि के संयोग से ही सूर्य अत्यन्त प्रखरता से प्रकाशित होता है। रात्रि के समय सूर्य के अस्त हो जाने पर उसका तेज अग्नि में प्रविष्ट हो जाता है। इस कारण रात्रि काल में अग्नि दूर से ही प्रकाशित होने लगता है।

सूर्य नेत्र का भी अधिदेव रूप है। चक्षु से गोलक के द्वारा स्थूल रूप को देखने की क्रिया भी सूर्यशक्ति की सहायता लिये बिना असम्भव है।

सूर्य का रथ :—सूर्यदेव के रथ का विस्तार नौ हजार (९,०००) योजन है तथा इससे दूना उसका ईषा दण्ड (जुआ और रथ के बीच का भाग) है। उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लम्बा है—जिसमें उसका पहिया लगा हुआ है। उसमें (पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न रूप तीन नाभि (परिवत्सरादि) पांच अरे और (षड्ऋतु रूपी) छः नेमि वाले अक्षय स्वरूप संवत्सरात्मक चक्र में सम्पूर्ण काल-चक्र स्थित है। सात छन्द ही उसके घोड़े हैं। उनके नाम हैं-गायत्री, बृहती, जगती, त्रिष्टुप, अनुष्टुप, पंक्ति आदि। भगवान सूर्य के रथ का दूसरा धुरा साढ़े पैंतीस सहस्र योजन लम्बा है। दोनों धुरों के परिणाम के तुल्य ही उसके युगार्द्धों (जूओं का) का परिणाम है। इनमें से छोटा धुरा उस रथ के एक युगार्द्ध (जूए) के सहित ध्रुव के आधार पर स्थित है और दूसरे धुरे का चक्र मानसोत्तर पर्वत पर स्थित है।

ज्योतिषशास्त्र में सूर्य की गति

मेष उष्णिक् (वैशाख मास) :—मेष अग्नि का वाहन है। वह सौम्य एवं देखने में छोटा है। इसी कारण से इस मास में गर्मी थोड़ी ही रहती है।

वृष :—(ज्येष्ठ मास) वृष भी एक तेजस्वी पशु है। दीर्घकाय है, अतः इस मास में उष्णता अपनी तरुणावस्था में पहुंच जाती है। दूसरे, वृष की तरह सूर्य देव भी शुक्ल वर्ण रहते हैं।

मिथुन :—(आषाढ़ मास) मिथुन युगल का पर्यायवाची है। इसका स्वरूप स्त्री-पुरुष का जोड़ा है। दो ऋतुओं का संगम होता है। ग्रीष्म एवं वर्षा में एक पुरुष का प्रतीक है और द्वितीय स्त्री का।

कर्क :—(श्रावण मास) यह जलाश्रयी जीव है; अतः इसका सूर्य इसमें जलाधिक्य होने का प्रतीक है।

सिंह :—(भाद्रपद मास) यह वनाश्रयी जीव है। अतः इस मास में वनश्री सजीव रहती है।

कन्या :—(आश्विन मास) इसका वास नौका पर हाथ में धान की बाली लिये हुए माना गया है। अतः इस मास में नदियों का जल घट कर यात्रा योग्य हो जाता है और किसान लोग अन्न निकालते हैं। कन्या का स्वरूप 'शक्ति' का प्रतीक है, अतः सूर्य भी शक्तिमान रहते हैं।

तुला :—(कार्तिक मास) यह तराजू का प्रतीक है जो साम्य सूचित करता है। इस समय सम्पूर्ण ऋतुओं का साम्य उपस्थित होता है और धान्योत्पत्ति से व्यापारिक

प्रवृत्तियों की अधिकता भी इस मास में रहती है। व्यापारियों का नवीन वर्षारम्भ भी इसी मास में होता है।

वृश्चिक :—(मार्गशीर्षमास) पीड़ा का प्रतीक है। इस मास की सर्दी वृश्चिक की तरह दुःखदायी होती है। प्रजावर्ग में नवीन रोगों के कारण पीड़ा व्याप्त रहती है।

धनु :—(पौष मास) इसका स्वरूप धनुष और बाण है। यह वीरता और तेजी का द्योतक है। इस मास में हवा बड़ी तेजी से यानी तीर के समान चलती है और सर्दी तारुण्य पर रहती है।

मकर (माघ मास) यह जल एवं भूमि दोनों पर रहने वाला जीव है। इस ऋतु में सूर्य की किरणें जलचर और थलचर सभी प्राणियों के लिए प्रिय हैं।

कुम्भ (फाल्गुन मास)। कुम्भ समृद्धि और ऐश्वर्य का प्रतीक है। इस मास में फसल पक कर तैयार हो जाती है। यह कुम्भ जल से भरा हुआ है जो धनधान्य सम्पन्न होने का द्योतक है।

मीन (चैत्र मास) मीन जलचारी जीव है। मीन का जल के प्रति जो लगाव है, उसे सब जानते हैं। इसी मास से जल के प्रति आसक्ति बढ़ने लगती है। यह वर्ष का अन्तिम मास है।

सूर्य का आदित्य नाम :—पुराण कथाओं में सूर्य की उत्पत्ति विभिन्न प्रकार से है। कहीं समुद्र मंथन से तो कहीं अदिति से हुई। इसी कारण सूर्य का एक नाम आदित्य भी पड़ गया।

पुराण की ऐसी कथाओं को इस वैज्ञानिक युग में इनके गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए जिज्ञासाएं होना अनुचित भी नहीं। जिज्ञासुओं को ऐसे उपाख्यानों के रहस्य को जानने के लिए वैदिक साहित्य की शरण लेनी पड़ेगी। सूर्य, चन्द्र की उपासना प्राचीन काल से आर्य लोग करते आये हैं। वेद में सूर्य का वर्णन अत्यधिक है, जैसे-

सूर्य के नाम :—सूर्य के सैंतीस नामों का उल्लेख मिलता है—

(१) सूर (२) सूर्य (३) अर्यमन् (४) आदित्य (५) द्वादशात्मन् (६) दिवाकर (७) भास्कर (८) अहस्कर (९) ब्रध्न (१०) प्रभाकर (११) विभाकर (१२) भास्वत (१३) विवस्वत (१४) सप्ताश्व (१५) हरिदश्व (१६) उष्णरश्मि (१७) विकर्तन (१८) अर्क (१९) मार्तण्ड (२०) मिहिर (२१) अरुण (२२) पूषन (२३) द्युमणि (२४) तरणि (२५) मित्र (२६) चित्रभानु (२७) वरोचन (२८) विभावसु (२९) ग्रहपति (३०) त्विषापति (३१) अहर्पति (३२) भानु (३३) हंस (३४) सहस्रांशु (३५) तपन (३६) सवितृ (३७) रवि।[1]

स सूर्यः पर्यु॑रू वरांस्येन्द्रोववृत्याद्रथ्येव चक्रा।
अतिष्ठन्तमपस्य न सर्गं कृष्ण तमांसि त्विष्या जघान॥[2]

सूर्य रूपी इन्द्र बहुत से तेजों को इस प्रकार घुमाता है जिस प्रकार सारथी अपने रथ के चक्रों को घुमाता है और वह अपने प्रकाश से कृष्णवर्ण के अन्धकार पर इस प्रकार से प्रहार करता है जैसे तेज चलने वाले घोड़े पर चाबुक का आघात किया जाता है।

१. ऋग्वेद १०। ८९।२।
२. ऋग्वेद १।१६४।२

४

सूर्य, रथ, अश्व :—सूर्य के रथ में जुड़े हुए जिन अश्वों (घोड़ों) को हम देखते हैं वे सूर्य की सात रश्मियाँ हैं जिनमें हरिकेशः सुषुम्णः आदि प्रधान हैं।

सप्त युञ्जन्ति रथमेक चक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधितस्थुः॥

सूर्य के रथ में सात घोड़े जुते हुए हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि सात नहीं एक ही सात नाम का सात स्थान पर गमन करने वाला घोड़ा इस रथ को चलाता है। इस रथ-चक्र की तीन नाभि है। यह पहिया शिथिल नहीं अत्यन्त दृढ़ है और कभी जीर्ण नहीं होता। इसी के आधार पर सारे लोक स्थित हैं। यह हुआ सीधा शब्दार्थ—जिसका अर्थ निरुक्तकार यास्काचार्य ने इस प्रकार से किया है। देवताओं के रथ, अश्व, आयुध आदि उन देवताओं से अत्यन्त भिन्न नहीं होते, किन्तु परम ऐश्वर्य शाली होने के कारण उनका स्वरूप ही रथ अश्व, आयुध आदि रूपों से वर्णन होता है। रथ शब्द का सूर्य के ही वर्णन से तात्पर्य है। रथ शब्द की सिद्धि करते हुए निरुक्तकार ने कहा है, स्थिर शब्द ही वर्ण्य-विषय होकर रथ शब्द के रूप में आ गया है। अब सूर्य की स्थिरता पर भी कई विद्वानों का कहना है कि रथ और उसके सारथी में यदि भेद की अपेक्षा होगी तो सौर जगत् मण्डल को सूर्य का रथ मानना पड़ेगा। पुराणकारों ने सूर्य की गति के प्रदेश क्रान्ति वृत्त को सूर्य का रथ बताया है।

दूसरा मत है जिसके अनुसार संवत्सर इस रथ का चक्र (पहिया) माना गया है। वस्तुतः संवत्सर रूप काल के कारण ही जगत घूम रहा है। परिणाम होना—एक अवस्था में चला जाना ही जगत का क्रम है। जगत का क्रम काल ही है। सुतरां सौर जगत का पहिया संवत्सर रूप वाला हुआ। इसी प्रकार से सूर्य के रथ के वाहन का वर्णन भी मिलता है। अर्थात् सूर्य रश्मियों को ही श्यन, सर्पण आदि नामों से आन्तरिक्ष का पक्षी कहा गया है—यहाँ रश्मियाँ ही अश्वों के समान होने से इन्हें ही सूर्य के रथ का वाहन कहा गया।

अश्ववाहन चन्द्रमा

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥

ऋग्वेद १।९।१३

पुराण कथाओं में चन्द्रमा से संबन्धित अनेक उपाख्यान मिलते हैं, जो बड़े ही रोचक और रहस्यात्मक हैं। सर्व प्रथम चन्द्रमा के उद्भव के संबन्ध वेदमत के अनुसार चन्द्रमा ब्रह्मा का मानस पुत्र है। पुराणों के अनुसार चन्द्रमा समुद्र-मन्थन से प्राप्त हुए। अमरकोश में चन्द्रमा के २० नाम हैं (१) हिमांशु (२) चन्द्रमस् (३) चन्द्र (४) इन्दु (५) कुमुदबान्धव (६) विधु ७) सुधांशु (८) शुभ्रांशु (९) औषधीश (१०) निशापति (११) अब्ज (१२) जैवातृक (१३) सोम (१४) ग्लौ (१५) मृगाङ्क (१६) कलानिधि (१७) द्विजराज (१८) शशधर (१९) नक्षत्रेश (२०) क्षपाकर।

पुराण कथाओं में शंकर के शीश पर अर्द्धचन्द्रमा का होना, 'सोम' शब्द में चन्द्रमा का तादात्म्य, चंद्रमाका गुरुपत्नी गमन, राहु द्वारा ग्रसित होना, ग्रहण लगना आदि प्रतीकात्मक उपाख्यानों को लेकर जन साधारण के मानस में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। ऐसे रहस्यों का उद्घाटन होना ही चाहिए। महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने अपने 'वैदिक' विज्ञान और भारतीय संस्कृति, ग्रन्थ में इसका समाधान किया है। इसके पूर्व पुराण वर्णित चन्द्रमा का स्वरूप प्रस्तुत करना उचित समझता हूँ।

विष्णु पुराण में चन्द्रमा का वर्णन—विष्णु पुराण के बारहवें अध्याय में पराशर मुनि ने चन्द्रमा का वर्णन इस प्रकार किया है-चन्द्रमा का रथ तीन पहियों वाला है। उसके वाम तथा दक्षिण में कुन्द कुसुम के समान श्वेत वर्ण के दस घोड़े जुटे हुए हैं। ध्रुव के आधार पर स्थित उस वेगशाली रथसे चन्द्रदेव भ्रमण करते हैं और नागवीर्य पर आश्रित अश्विनी आदि नक्षत्रों का भोग करते हैं। सूर्य के समान ही इनकी किरणों के भी घटने बढ़ने का निश्चित क्रम है।

समुद्र गर्भ से उत्पन्न इनके घोड़े एक बार जोत दिये जाने पर एक कल्प पर्यन्त रथ खींचते रहते हैं। सुरगण के पान करते रहने से क्षीण हुए चन्द्रमा का पोषण सूर्यदेव अपनी एक किरण से करते हैं। जिस क्रम से देवगण चन्द्रस्थ अमृत का पान करते हैं, उसी क्रम से जलापहारी सूर्यदेव उन्हें शुक्ल प्रतिपदा से प्रतिदिन पुष्ट करते हैं। इस प्रकार आधे महीने में एकत्रित हुए चन्द्रमा के अमृत को देवगण फिर पीने लगते हैं, क्योंकि देवताओं का आहार तो अमृत ही है समस्त देवगण चन्द्रस्थ अमृत का पान करते हैं। जिस समय दो कला मात्र अवशिष्ट चन्द्रमा सूर्य मण्डल में प्रवेश करके उसकी अमा नामक किरण में निवास करता है वह तिथि अमावस्या कहलाती है।

उस रात्रि वह पहले तो जल में प्रवेश करता है, फिर वृक्ष लता आदि में निवास करता है। तदन्तर क्रम से सूर्य में चला आता है। वृक्ष और लता आदि में चन्द्रमा की स्थिति के समय अमावस्या को जो उन्हें काटता है अथवा उनकी एक पत्ती भी तोड़ता है उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगता है। द्विकलाकार चन्द्रमा की बची हुई अमृतमयी एक कला का पितृगण पान करते हैं।

अमावास्या के दिन चन्द्र-रश्मि से निकले हुए उस सुधा का पान करके अत्यन्त तृप्त हुए सौम्य, बर्हिषद् और (अग्नि) ष्वात्त तीन प्रकार के पितृगण एक मास पर्यन्त सन्तुष्ट रहते हैं। इस प्रकार चन्द्रदेव शुक्ल पक्ष में देवताओं की और कृष्ण पक्ष में पितृगण की पुष्टि करते हैं तथा अमृत मय शीतल जल कणों से लता वृक्षादिकों का और लता औषधि आदि उत्पन्न करके तथा अपनी चन्द्रिका द्वारा आनंदित कर वे मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी प्राणियों का पोषण करते हैं।

सोम शब्द चन्द्रमा के अतिरिक्त लता वाचक भी है। यहाँ दो पदार्थों का एक ही नाम होने के कारण भ्रम होना भी स्वाभाविक है। यही कारण है कि चन्द्रमा की कथा का वास्तविक रहस्य जानने में कठिनाई होती है। अर्थात् सोम चन्द्र शब्द जहाँ सोम औषधि के साथ चन्द्र शब्द आता हों वहाँ सोम लता का ही ग्रहण होता है। जहाँ ग्रह चन्द्रमा का ग्रहण किया गया है, वहाँ अकाशीय नक्षत्र ग्रह चन्द्रमा का ग्रहण है। इसलिए चन्द्रमा को औषधिपतिके साथ निशा-पति भी कहा गया है।

वैदिक साहित्य में दो समुद्रों का उल्लेख है। एक समुद्र भूतल जल स्वरूप में है। दूसरा अन्तरिक्ष है। यहाँ संकेत मिलता है कि चन्द्रमा भूतल स्थित समुद्र से उत्पन्न न होकर अन्तरिक्ष समुद्र से उत्पन्न हुआ है। चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका द्वारा आह्लादित करके मनुष्य, पशु, पक्षी एवं कीट पतंगादि सभी प्राणियों का पोषण करते हैं। इसीलिए कहा गया है कि चन्द्रमा द्वारा अमृत वर्षा होती है।

सूर्य चन्द्रमा का विवाह—यह उपाख्यान भी सोम शब्द से ही सम्बन्ध रखता है, जैसा कि इस मन्त्र से प्रकट होता है—

सोमो वधुयुरभवदश्विनास्तामभाकरा।
सूर्या यत्पत्येशसन्ती मनसा सविताऽददात्।

ऋ० १०।८५।९

यहाँ सूर्य की प्रभा (उषा) सूर्य किरण ही सूर्य की कन्या है, जो सूर्य से उत्पन्न होने से सूर्य पुत्री कहलायी। मंत्र का भावार्थ यह है कि (सोमा) चन्द्रमा (वधुयुः) वधू की इच्छा वाला हुआ, अर्थात् चन्द्रमा ने विवाह करने की इच्छा की। बराती बने अश्वी अर्थात् दिन और रात्रि देव। जब (मनसा) मन के परम अनुराग से पति की चाह करने वाली सूर्या को सूर्य ने देखा तब उन्होंने उसे चन्द्र के अधीन कर दिया। इस प्रतीकात्मक वर्णन से ज्ञात हो जाता है कि चन्द्रमा सूर्य किरणों से प्रकाशित हुआ करता है।

गुरु पत्नी गमन रहस्य :—चन्द्रमा से सम्बन्धित एक और कथा प्रचलित है कि इन्होंने अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा के साथ सहवास किया। इस रूपकात्मक उपाख्यान का भी सम्बन्ध आकाशीय नक्षत्रों के मेल से ही है।

प्रारम्भ में ज्योतिषी लोग बृहस्पति से ही गणना आरम्भ करते थे। बाद में, ज्योतिषियों ने चन्द्रमा के अनुसार तारा की गणना की। यहाँ बृहस्पति की तारा पर चन्द्रमा का अधिकार होना ही इस कथा का मूल उत्स है।

चन्द्रमा की क्षय-वृद्धि :—'काशी खण्ड' में वर्णन है कि ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रि से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई। महादेव की कृपा से इन्हें चन्द्र लोक का राज्य मिला। दक्ष की कन्या

२७ नक्षत्रों से इनका विवाह हुआ। इनकी एक पत्नी रोहिणी भी है जिस पर इनका अधिक प्रेम रहने के कारण दक्ष ने इन्हें क्षय होने का शाप दे दिया। फिर बाद में प्रसन्न होने पर उन्होंने वृद्धि का आशीर्वाद भी दिया। जिससे इनका १५ दिनों तक क्षय तथा १५ दिनों तक वृद्धि होती है। यही कारण है कि चन्द्रमा की कलाएँ घटती-बढ़ती हैं और पूर्णिमा को पूर्ण हो जाती हैं।

चन्द्रमा में कलंक—चन्द्रमा में कलंक के सम्बन्ध में भी अनेक कथाएँ हैं। यह भी कहा जाता है कि चन्द्रमा उस समुद्र से उत्पन्न हुआ है जिसमें पहले विष भी था। अतः इन दोनों के सम्मिश्रण से चन्द्रमा का बहुत-सा हिस्सा कृष्ण वर्ण का (काला) दिखने लगा। दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि चन्द्रमा में मृग बैठा है। मृग भी सूर्य का नाम है। सूर्य अपनी किरण द्वारा चन्द्र के गोद में बैठा है जिससे शशि मृगाङ्क कहा जाता है। वास्तव में यह नाम सूर्य की किरण का ही है। कहीं-कहीं इसे अत्रि भी कहा गया है। किन्तु है यह पृथ्वी की छाया जैसा कि कहा है।

"अदन्ति जलानि ये येऽयं: किरणः।

मानस में चंद्र-प्रसंग

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
विष संयुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥

राम ने कहा कि विष चन्द्रमा का भाई है, और ऐसा प्रिय है कि उसे हृदय में बसाया है।

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥

गोस्वामी जी ने इस दोहे में बड़े पते की बात कही है। राम सूर्य रूपी विष्णु के अवतार हैं। अतः चन्द्रमा के हृदय में राम की श्यामता ही है तथा सूर्य वंशी राम की ही कृपा से चन्द्रमा में प्रकाश है अतः चन्द्रमा राम का दास ही तो हुआ।

चन्द्रमा का वाहन अश्व—चन्द्रमा के रूप और वाहन का वर्णन कई पुराणों में विभिन्न प्रकार से है। कहीं इन्हें चार भुजाओं से और कहीं दो भुजाओं से युक्त बताया गया है। रूपमण्डन आदि ग्रन्थों के अनुसार इनका वर्ण श्वेत है। इनकी दो भुजाएँ हैं। जिनमें एक में गदा है दूसरा वरद मुद्रा में है। इनके रथ में तीन ही पहिये जुड़े हुए हैं। रथ में श्वेत वर्ण के दस अश्व जुते हैं। कहीं-कहीं सात अश्व भी हैं।

वैदिक शाहित्य में शरीर की एक संज्ञा रथ भी है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में देव रथ का वर्णन किया गया है—

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः।
समां नो हव्यदातिं जुषाणो, देवरथ प्रति हव्या गृभाय॥

चन्द्रग्रहण—पुराण कथा के अनुसार समुद्र मंथन के समय निकले हुए अमृत पान के समय देवताओं की पंक्ति में राहु भी बैठकर अमृत पी रहा था। इस भेद को चन्द्रमा ने विष्णु से कह दिया। विष्णु ने क्रुद्ध होकर चक्रसे राहु पर प्रहार कर दिया जिससे राहु का सिर धड़ से अलग हो गया। उसी दिनसे राहु चन्द्रमा से रुष्ट रहता है और उन्हें ग्रसित करता है। किन्तु वैज्ञानिक सत्य यह है कि चन्द्रमा के ऊपर पृथिवी की छाया पड़ती है। इसी प्रकार चन्द्र की छाया से सूर्यग्रहण होता है। स्वयं चन्द्रमा प्रकाश हीन है। यही कारण है कि पृथ्वी की छाया पड़ने से सूर्य का प्रकाश उस पर नहीं पड़ता, जिससे ग्रहण का ज्ञान नहीं होता।

वायुदेव वाहन मृग

वरं ध्वज पताकाञ्च कमण्डलुं करंदधत्।
मृगारूढो हरिद्वर्णः पवनो वायु दिवस्पतिः ॥

सामान्यतः वायु का कोई रूप रंग नहीं होता, लेकिन शास्त्रीय मान्यता में वायुदेव की जो रूप कल्पना की गयी है, उसमें उनका वर्ण हरा बताया गया है। उन्हें मृग पर सवार दिखाया गया है। मत्स्यपुराण के अनुसार वायु का वर्ण धुएं जैसा है। इनकी मुद्रा शांत और भौहें टेढ़ी हैं। इनकी मुद्राओं में वज्र है। इनके विविध रूपों के ४९ नाम हैं। इनका वाहन हरिण है—

वायु रूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रन्तु मृगवाहनम्।
चित्राम्बरधरं शांतं युवानं कुञ्चित भ्रु वम ॥
मृगाधि रूढं वरदं पताका ध्वज संयुक्तम ॥ [-मत्स्य, २६०।१८।१९।

वायु रूप की कल्पना—योग साधना की दृष्टि से वायु वाहन मृग होना एक विशेष अर्थ रखता है। कहा गया है कि वायु का नाम चक्र अनाहृद और स्थान हृदय है, जिसके द्वादश दल हैं। उसका वर्ण अरुण है। बीज का वाहन मृग है। यहाँ रुद्र रूप वायु ने अपने में समेट लिया। रुद्र या शंकर के शीश पर अर्द्ध चन्द्र का होना इसीपर आधारित है। वायु ही जगत का प्राण है। वह पाँच प्रधान शक्तियों में विभक्त है। प्रमुख जीवन शक्ति प्राण वायु ही से समस्त प्राणी जीवित हैं। वायु के २० नाम इस प्रकार हैं—(१) श्वासन (२) स्पर्शन (३) वायु (४) मातरिश्वन (५) सगति (६) पृषदश्व (७) गन्धवह (८) गन्धवाह (९) अनिल (१०) आशुग (११) समीर (१२) मारुत (१३) मरुत (१४) जगत्प्राण। (१५) समीरण (१६) नभस्वत, (१७) तात (१८) पवन (१९) पवमान (२०) प्रभञ्जन। इसी प्रकार शरीर स्थित वायु के पाँच नाम हैं। (१) प्राण, हृदय स्थित वायु है जिसके अभाव में प्राणान्त हो जाता है। (२) अपान, गुदा स्थित वायु (३) समान नाभि स्थित (४) उदान नाभि स्थित वायु (५) व्यान, यह शरीर-भर में फिरने वाला वायु है।

वायु का अर्थ केवल हवा नहीं—श्रुतिने वायु को ब्रह्मा का ही एक रूप कहा है—'वायुर्य मैकः' इत्यादि नाना मन्त्रों में नाना प्रकार से कहा है। सर्वव्यापी जो सत्ताशक्ति है, उसका जो सचल भाव है, उसे वायु कहा जाता है। यह सचलता केवल देश-काल में है ऐसा नहीं। विराट मन में काम, संकल्प आदि भी इस वायु संज्ञा के भीतर आ जाते हैं। शक्तितंत्र की भाषा में है स्पन्द। जड़ प्राण, मन, बुद्धि समष्टि और व्यष्टि भावसे इस वायु के अधिकार में हैं। वायु मूल वस्तु का ही गति रूप है (स्थूल सूक्ष्म कारण) उसके बाद 'यन्त्रम्' इस शब्द के अन्त में हैं 'रे'—अग्निबीज। अग्नि भी ब्रह्मका एक रूप है। संक्षेप में, जिसके द्वारा रूप या आकृति आती है, अथवा रूपान्तर साधित होता है। कहना न होगा कि रूप यहाँ केवल बाहर का रूप नहीं—जड़, प्राण, मन इन सबके सभी 'ग्रामों' में अग्निको पहचानना होगा।

इस प्रकार दो तत्व हमें मिले। एक है वायु या विश्व-स्पन्द सर्वविध गति और गति का संभावना—रूप उसे आधार बनाकर ही अग्निका रूपायण' कर्म हुआ करता है। विश्वमें पूरी सृष्टि 'अग्नि सख' (वायु) एवं अग्नि—इन दोनों को लेकर हो रही है। मानस की संकल्प सृष्टि भी इसके बाहर नहीं है।

वैदिक साहित्य, शतपथ आदि ग्रन्थोंमें वायु का वैज्ञानिक स्वरूप इस प्रकार है इष नाम अन्नका और अर्क नाम पर बल का है। वृष्टि के द्वारा वायु अन्न का कारण होता है। सभी प्राणियों को बल भी वायु से मिलता है। साथ ही वायु में जो क्रिया है, उसका कारण सूर्य है। सूर्य-किरणों की प्रेरणा से वायु में गति होती है। यह विज्ञान 'दिवो यः सविता प्रर्पयतु' (हे वायु सूर्य देव तुम्हें गतिशील करें।) इस पद से स्पष्ट किया गया है। इसकी व्याख्या में शतपथ ब्राह्मण में वर्णन है 'सविता वै देवानां प्रसविता' सूर्य ही सब देवताओं को प्रेरणा देने वाला है और ऐतरेय में तो बहुत ही स्पष्ट शब्दों में बताया गया है कि 'सवितृ प्रसूतो ह्येष एतत्पवते (ऐ० ३।१) अर्थात् सूर्य द्वारा चालित यह वायु चलकर सब जगत् को पवित्र कर रहा है। आगे 'श्रेष्ठतमाय कर्मणे की व्याख्या में शतपथ में कहा है कि 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' पूर्वोक्त प्रकृतिका यज्ञ वायु के चलने से ही होता है और जगत का आप्यायन करना वायु का काम है। यों वायु वृष्टि, बल के पोषण का कारण है। सूर्य-किरणों से इसमें गति होती है। इस के द्वारा आदान-प्रदान रूप जगत् का यज्ञ सम्पन्न होता है।

■

कुबैर का वाहन—नर

कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड् गुह्यकेश्वरः।
मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाधिपः॥
किन्नरेशो वैश्रवणः पौलस्त्यो नरवाहनः।
यक्षैकपिङ्गैलविल श्रीदःपुण्यजनेश्वरः॥

कुबेर के १७ नाम हैं। (१) कुबेर (२) त्र्यम्बकं सखा (३) यक्षराज, (४) गुह्यकेश्वर (५) मनुष्यधर्मा (६) धनद (७) राजराज (८) धनाधिप (९) किन्नरेश (१०) वैश्रवण (११) पौलस्त्य (१२) नरवाहन (१३) यक्ष (१४) एकपिङ्ग (१५) ऐलविल (१६) श्रीद (१७) पुण्यजनेश्वर।

कुबेर उत्तर दिशा के दिक्पाल और धन सम्पत्ति के अधिपति हैं अतः इन्हें यक्षराज भी कहा जाता है। हिमालय स्थित अलका पुरी इनका निवास है जिसमें चैत्ररथ नामक उत्तम पुष्पों से सुशोभित उद्यान है जहाँ प्रकृति ने अपना सम्पूर्ण वैभव बिखेर रखा है। इस देवता की कल्पना धनिकों के अनुरूप की गयी है।

इनका स्वरूप बड़ा कुरूप है। कुबेर का पेट निकला हुआ, मुख मनहूस-सा, स्वभाव और वाणी नीरस हृदय हीन किन्तु सभी अङ्ग स्वर्ण आभूषणों से भरे हैं। कानों में रत्न जटित कुंडल हैं। इनके दो करों में से एक में गदा है और दूसरा वरद मुद्रा में है जिससे वे द्रव्य गिन रहे हैं। कहीं-कहीं हाथ में मदिरा पात्र भी दिखाया गया है।

इनके रथ को मनुष्य खींच रहा है। जैसा कि आज भौतिक जगत में देखा जाता है कि सम्पत्ति शाली धनपति कुबेरों की आधार शिला गरीब श्रमिकों के श्रमपर ही स्थापित है। धनपति कुबेर अपने धन मद के कारण धर्म ज्ञान से विमुख हो भौतिक वाद में लिप्त है।

वरुण का वाहन-मत्स्य

वरुणञ्च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम् ।
शंख स्फटिकवर्णाभं सित हाराम्बरा वृतम् ॥
झषासनगतं शान्तं किरीटांगदधारिम् ।

(मत्स्य–२६०।१७।१८)

श्वेत शंख अथवा स्फटिक के समान शुभ्र वर्ण वाले वरुण के हाथ में पाश है। उन्होंने श्वेत ही हार धारण किया है। किरीट और अंगद धारण किये हुए हैं और मत्स्य पर बैठे हुए हैं। वरुण जल के प्रतीक देव हैं, इनका वर्ण श्वेत है। क्योंकि जल का रूप अभास्वर शुक्ल है। इनका वाहन मत्स्य है। कोई इनका वाहन गज मानते हैं। इसका अभिप्राय शायद यह हो सकता है कि मेघ को भी गज कहते हैं और मेघ का साक्षात् सम्बन्ध जल से है। क्योंकि मेघ जल का वहन करता है। इसीलिए सम्भवतः मेघ अर्थात् हाथी को वरुण का वाहन माना गया है। किन्तु वस्तुतः वरुण का वाहन मत्स्य ही है।

विभिन्न स्थानों पर प्राप्त होने वाली वरुण की प्रतिमाओं में वाहन रूप में मकर अंकित हुआ है। मत्स्य पुराण में वरुण का वाहन मत्स्य ही उल्लिखित है। वस्तुतः मकर और मत्स्य दोनों ही शक्तिशाली जलचर हैं। सिन्धु प्रान्त में वरुण को झूले लाल के नाम से पूजा जाता है। वहाँ भी इनका वाहन मत्स्य ही माना जाता है।
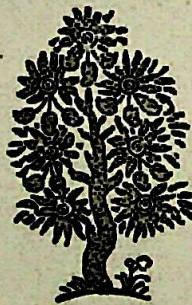
यम का वाहन–महिष

तथा यमं प्रवक्ष्यामि दण्ड पाशधरं विभुम् ।
महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम् ।
सिंहासनगतञ्चापि दीप्ताग्निसमलोचनम् ।।

मत्स्य–२६०।१२।१३

यमराज महाकाल के दूत हैं तथा नरकलोक के अधिपति हैं। आठ लोकपालों में इनकी गणना की जाती है। इनके चार आयुध हैं लेखनी, पुस्तक, कुक्कुट और दण्ड। इनका वर्ण कृष्ण, रूप भयानक तथा वाहन महामहिष है।

यम की उत्पत्ति सूर्य से बतायी गयी है। इस रहस्य को जानने पर ही ज्ञात होगा कि यम कौन हैं और ये सूर्य से किस तरह उत्पन्न हुए? सूर्य-मण्डल से प्राप्त होने वाली सभी प्राणियों को उम्र जब शक्ति से विच्छिन्न होकर चुक जाती है, तब मृत्यु हो जाती है। सूर्य और उससे उत्पन्न होने वाली आयु को परस्पर विच्छिन्न करने वाली शक्ति का नाम ही 'यम' है। यह यम रूपी शक्ति भी कहीं बाहर से नहीं आती, अपितु सूर्य से ही प्रकट होती है।

इसका वाहन महिष है। महिष जड़ता और विवेक शून्यता का प्रतीक है। प्राणहीन शरीर में कोई चेतना, कोई क्रियाशीलता नहीं रह जाती है। शव जड़ और चेतनाहीन होता है। इसलिए मृत्यु के देवता यमका वाहन जड़ता का प्रतीक महिष है।

भारतीय वाङ्मय से अपरिचित व्यक्ति प्रायः यम देवता और ऐतिहासिक यम में अन्तर नहीं कर पाते। वेदों में यम अग्नि, सूर्य और वायु को भी कहा गया है—अग्निर्वाव यमः (तैत्तिरीय संहिता), एष वै यमो य एष (सूर्यः) तपति (यजुर्वेद), अयं वाव यमो योऽयं (वायुः) पवते (यजुर्वेद)। वेदों में यम और यमी का अस्तित्व उस समय से माना जाता है, जब रात्रि और दिन की भी सृष्टि नहीं हुई थी। 'मैत्रायणी संहिता' का यह प्रवचन इस दृष्टि से द्रष्टव्य है—

यम वा अम्रियत। ते देवा यम्या यममपा—ब्रुवन्।
ता यदपृच्छन्। साब्रवीत्। अद्यामृतेति।
तेऽब्रुवन्। न वा इमम् इयम् इत्थं मृष्यते।
रात्रीं सृजावहा इति। अहर्वाव तर्हि आसीन् न
रात्रिः। ते देवा रात्रिमसृजन्त। ततः
श्वस्तनमभवत्। तः सा तममृष्यत।

१।५।१२॥

इससे स्पष्ट हो जाता है कि यम–यमी का आधिदैविक उपाख्यान उस प्रारम्भिक काल का है जब पृथ्वी आदित्य से दूर हो रही थी और राशियों की परिक्रमा-कक्षा स्थिर नहीं हुई थी। वैसे 'यम' का अर्थ युग्म है। इसी से 'यमल' शब्द भी बना है, जिसका अर्थ जुड़वां है।

ऐतिहासिक अर्थात् मानुष यम त्रेता युग के प्रारम्भ में, कश्यप और देवमाता अदिति के पुत्र विवस्वान् (आदित्य) के पुत्र थे। विवस्वान् को जुड़वां सन्तान हुआ। बालक का नाम यम और बालिका का यमी रखा गया। यम और यमी भाई-बहन के आदर्श रूप माने जाते हैं। आज भी यम द्वितीया के दिन भाई-बहन का पावन सम्बन्ध मुखर हो उठता है। यमी को ही यमुना नदी से भी जोड़ दिया गया। भविष्य पुराण में यमुना नदी में यम तर्पण का विधान है—

यां काञ्चित् सरितं प्राप्य कृष्ण पक्षे चतुर्दशीम्।
यमुनायां विशेषेण नियतस्तर्पयेद्यमान्॥

'मार्कण्डेय पुराण' में यम-यमी की उत्पत्ति के बारे में उल्लेख है कि किस प्रकार सूर्य की पत्नी संज्ञा से यम-यमुना की उत्पत्ति हुई—

संज्ञा च रविणा दृष्टा निमीलयति लोचने।
यतस्ततः सरोषोऽर्कः संज्ञां निष्ठुरमब्रवीत्॥
मयि दृष्टि सदा यस्मात् कुरुषे नेत्रसंयमम्।
तस्माज्जनिष्यसे मूढे! प्रजासंयमनं यमम्।
ततस्तस्यास्तु संजज्ञे भर्तृशापेन तेन वै।
यमश्च यमुना चेयं प्रख्याता सुमहानदी॥

यमके अनेक नाम हैं जिनसे उनकी विभिन्न विशेषताओं का परिचय मिलता है। जैसे— धर्मराज, पितृपति, समवर्ती, परेतराट्, कृतान्त, यमुनाभ्राता, शमन, यमराज, काल, दण्डधर, श्राद्धदेव, वैवस्वत्, अंतक, जीवितेश, महिषध्वज, औडम्बर, कीनाश, शीर्णपाद, कंक, भीमशासन, महिषवाहन आदि।

यमराज को प्राणियों के कर्म के फलाफल का निर्णय करने वाला देवता माना गया है। इस रूप में उनकी पुरी संयमनी है। लेखक (लिपिक) चित्रगुप्त हैं। भृत्य चण्ड और महा चण्ड है, विचारभूमि (आसन) नीचि है, अनेक काल पुरुष सहायक हैं और धूमोर्णा तथा विजया नाम की दो पत्नियाँ हैं।

यमवाहन महिष के कई पर्यायवाची शब्द 'भाव प्रकाश' में हैं—

महिषो घोटकारिः स्यात् कासरश्च रजस्वलः।
पीनस्कन्धः कृष्णकायो लुलापो यमवाहनः॥

□

वराह

नाम—रूप—रहस्य

पुराणोक्त वराह अवतार का सारा शरीर मानव रूप में रहते हुए भी मुख वराह (शूकर) पशु के सदृश होना एक रहस्यमय विषय है, जिसका समाधान इस प्रकार है। जब जल में मृत्तिका, सिकता आदि रूप पृथक-पृथक प्रकट होते हैं। तब कभी चारों दिशाओं की ऐसा वायु चलता है जो उन सब अंशों को एक स्थान में एकत्र कर देता है। इसे ही पुराणों में वराह अवतार कहा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गयी है।

पुराण कथाओं में वराह का वर्णन कहीं वायुरूप में, तो कहीं यज्ञ के प्रथम प्रवर्तक के रूप में हैं। इसलिए यज्ञ रूप से भी पुराणों में वराह का वर्णन हुआ है। वराह शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भी ब्राह्मण ग्रन्थों में यही आशय प्रकट किया गया है--

'वृणाति च आह्वयति च'—यह वायु ही पृथ्वी पिण्ड को दबाये रहता है। इसलिए पिण्ड फिर विकीर्ण नहीं होता। अर्थात् भिन्न भिन्न रूपों में बिखरता नहीं। इसी तात्पर्य का पुराणों में वर्णन मिलता है कि पृथ्वी वराह की द्रंष्टा 'दाढ़' पर स्थित है। दाढ़ में रखी हुई वस्तु को जिस प्रकार दबा लिया जाता है। उसी प्रकार वायु ने पृथ्वी पिण्ड को दबा रखा है। "वराह की वायु-रूप की स्तुति विष्णु पुराण में है। (१) तैत्तिरीय आरण्यक (१।१।३०) में उद (जल) वृतासि वराहेण कृष्ण शतबाहुना। इयती हृइयमग्रे पृथ्वी आस प्रदेश मात्री सोऽस्या पतिः प्रजा पति रिती वाराह पुराण में वर्णन है कि पृथ्वी पर से अग्नि तत्त्व के नष्ट हो जाने से पृथ्वी जलमें मग्न हो गयी।

यह उस समय की घटना है। जब शीत बढ़ जाने से सर्वत्र हिममय हो गया। तब उसे पिघलाकर पृथ्वी के उद्धारार्थ दित्याग्नि की रक्षा की आवश्यकता हुई जो कार्य प्रजापति विष्णु ने अग्नि स्वरूप (सूर्य) द्वारा जल का शोषण किया और पृथ्वी का जल से उद्धार किया। यह अग्नि द्वारा इस कार्य के सम्पन्न होने से वर आहार (उत्तम भोजन) प्राप्त होने लगा। इससे उस शक्ति का नाम वराह पड़ा अर्थात् जल से ऊपर आने पर पृथ्वी को खोदा (जोता) गया और बीज बोया गया। अन्न उत्पन्न हुआ, जो जीवन का आहार हुआ। शीत भूमि को खोदने का गुण सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न वराह पशु में भी है। इस कारण यह प्रतीक रूप हुआ। तन्त्र ग्रन्थों में बौद्धों के बज्रयान मतानुसार 'वराह' शब्द का अर्थ एक कल्प परिमित काल है। वार शब्द का अर्थ श्रेष्ठ अर्थात् आत्मा है। इसे जो आहृत या आवृत्त करे उसीका नाम वाराह है। कालसत्ता ही सर्व प्रथम आत्मा को आवृत्त करती है। इसी कारण से कालशक्ति का नाम वाराही है।

वराह-कल्प—सनातन धर्मावलम्बी नित्य सन्ध्या, तथा प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में संकल्प में "श्वेते वराह कल्पे" पद का उच्चारण करते हैं। जिसका रहस्य है कि पुराणों में कहे गये ब्रह्मा के दिन और रात का निरूपण के समय का यह वाक्य है—जैसे मनुष्य लोक में मानव के ३० दिन का एक मास होता है, वैसे ही ब्रह्मा के एक मास में भी ३० कल्प होते हैं। उन कल्पों के नाम भिन्न-भिन्न पुराणों में इस प्रकार बताये गये हैं।

(१) श्वेत वाराह (२) नील लोहित (३) रथान्तर (४) रावण (५) प्राण (६) बृहत (७) कन्दर्प (८) सत्य (९) ईशान (१०) व्यान (११) सारस्वत (१२) उदान (१३) गरूड़ (१४) कूर्म (१५) वामदेव।

यह नाम आकाशीय नक्षत्रों के भी हैं। किन्तु यहाँ ये ब्रह्मा के शुक्ल पक्ष के १५ दिनों के नाम रूप में मान्य हैं। इसमें कर्म कल्प पूर्णिमा कहा गया है। आगे कृष्ण पक्ष के १५ दिनों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) नारसिंह (२) समान (३) आग्नेय (४) सोम (५) मानव (६) वैकुण्ठ (७) लक्ष्मी (८) सावित्री (९) घोर (१०) वाराह (११) वैराज (१२) गौरी (१३) महेश्वर (१४) पितृ कल्प।

मत्स्य पुराण के अनुसार यह कल्पों का निरूपण है। किन्तु इन कल्पों के अतिरिक्त भी कई कल्प हैं। इनमें वाराह नाम तीन कल्पों का है। वृषभ तथा गान्धार नामक कल्प भी हैं। यह गान्धार नामक स्वर और नाद भी है। ऋषभ नाम कल्प से स्वर का उत्पन्न होना बताया गया है। इसी प्रकार ब्रह्मा के ६ ऋषियों के नाम भी स्वरों में ही हैं। जो ऋतुओं के भी हैं— शिशिर, बसन्त, निदाघ, वर्षा शरद तथा हेमन्त। ये छहो ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। इसी प्रकार बीसवाँ कल्प निषाद है। यह भी २१ वाँ कल्प में पंचम कहा गया है।

कूर्म अवतार

कच्छप रूप में भगवान की उपासना भी ईश्वर की सर्व व्यापकता का ही प्रमाण है जिसके नाम और रूप की कल्पना का आधार विभिन्न होते हुए भी केन्द्र विन्दु एक ही है। सामान्यतः विद्वानों की मान्यता है कि सृष्टि के आरंभ में प्रथम जल जीवों में कच्छप, मत्स्य, वराह आदि हुए हैं।

भारतीय विचारकों के मतानुसार मरीचि नाम प्राण का भी है। गर्भ में प्राण का प्रारम्भिक रूप कश्यप सदृश होने से यही शब्द कालान्तर में कश्यप से कच्छप, कूर्म कहा जाने लगा, जो मरीचि रूप प्राण का ही नाम है। कूर्म नाम ब्रह्मा के एक कल्प का भी है, जो ब्रह्मा का एक दिन है। इससे प्रकट है कि यह एक विशेष काल का नाम है, जिसके नाम से कूर्म पुराण की रचना की गयी। कूर्म नाम एक जल जन्तु का भी है, जिसकी उत्पत्ति सृष्टि के प्रारम्भ काल में हुई। कश्यप ऋषि जल को स्थल रूप में परिवर्तन कर मानव सृष्टि के निर्माता माने जाते हैं। यहाँ प्राण की एक अवस्था का नाम होने से कश्यप (कच्छप) का प्रतीक कूर्म है।

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्तवीर्योऽवितथोऽभिसन्धिः।
कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार॥

—श्रीमद्भागवतम्।

अमित पराक्रमी भगवान् विष्णु ने विघ्नेश विधि का अवलोकन कर तदनुसार तत्काल अद्भुत और महान कच्छप रूप को धारण कर जल में प्रवेश किया तथा मन्दराचल को जल से उबारा।

■

भगवानका मत्स्यावतार

पुराण ग्रन्थों में मत्स्यावतार की प्रमुख दो कथाएँ कहीं गयी हैं। प्रथम जब शंखासुर नामक दैत्य ने वेदों को चुरा कर महासमुद्र में डुबा दिया और स्वयं भी जल में छिप गया। तब देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान ने मत्स्यावतार धारण कर शंखासुर का वध कर वेदों का उद्धार किया। उन्होंने वेदों की रक्षा हेतु पुनः ब्रह्मा को वेद प्रदान किया। तब से ब्रह्मा ने उन्हें अपने मुख में धारण कर लिया। इस कथा से ज्ञात होता है कि असुरों द्वारा वैदिक धर्म को नष्ट करने का प्रयास हुआ और तभी से ब्राह्मण लोग वेद को कण्ठस्थ करने लगे।

आगे इसी कथा के साथ सरयू नदी की उत्पत्ति का भी रोचक वर्णन है। शंखासुर द्वारा वेद चुराने पर ब्रह्मा को बड़ा दुःख हुआ। उनके नेत्रों से जो अश्रु धारा बही, उसी से हिमालय पर अश्रु रूपी जल एकत्रित होकर सागर बन गया। जिसका नाम मानसरोवर पड़ा। इसी समय वैवस्वत मनु ने अपने कुल गुरु से यज्ञ करने की इच्छा प्रकट की। गुरु ने मनु को जल धारा प्रकट करने की आज्ञा दी। तब मनु ने अपने धनुष से हिमालय पर शर छोड़ा, जिससे मान-सरोवर की सीमा तोड़कर नदी रूप में उपर्युक्त नदी बहने लगी। नदी के आगे-आगे बाण चल रहा था। अयोध्या तक उसे लेकर वह पूर्व की ओर बढ़ा, जहाँ यह नदी बहती हुई सीधे पूर्वी सागर में जाकर विलीन हो गयीं। शर (बाण) के द्वारा लायी जाने से इसे सरयू कहा जाता है प्रायः सभी बड़ी नदियों की उत्पत्ति हिमालय सूर्य की किरण रूपी बाण के प्रभाव से हिम पिघलकर नदियों में प्रवाहित हो रहा है।

मत्स्यावतार से सम्बंधित एक अन्य कथा इस प्रकार है। प्रलय के पहले वैवस्वत मनु मोक्ष की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे थे। एक दिन कृतमाला नदी में जब वे जल से पितरों का तर्पण करने लगे, उसी समय उनकी अञ्जलि के जल में एक छोटा-सा मत्स्य आ गया। मनु ने जब उसे जल में फेंकने का विचार किया। तब मत्स्य ने कहा, 'महाराज, मुझे जल में मत फेंकिये। यहाँ ग्राह आदि जल जन्तु मुझे खा जायेंगे। मुझे उनसे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिये।' मनु ने यह सुनकर उसे अपने कलश के जल में डाल दिया। मत्स्य उसमें पड़ते ही बड़ा हो गया। उसने पुनः मनु से कहा, 'महाराज, मुझे इससे बड़ा जल स्थान दीजिये।' मनु ने उसे एक बड़े जल पात्र में रख दिया। उसमें भी कुछ देर में मत्स्य और बड़ा हो गया और मनु से बोला, महाराज, इस से भी बड़े जलाशय में मुझे रखें। तब मनु ने उसे एक कूप में डाल दिया। जब उसमें भी बड़ा होकर उससे न रहा गया तब फिर उसने मनु से कहा, महाराज, मुझे इससे बड़े जलाशय में पहुँचाइये। तब मनु ने मत्स्य को सरोवर में डाल दिया, किन्तु जब वह मत्स्य बढ़कर सरोवर से भी बड़ा हो गया तब मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया। समुद्र में पड़ते ही मत्स्य एक लाख योजन बड़ा हो गया। इस अद्भुत मत्स्य को देखकर मनु को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले, "आप कौन हैं ? निश्चय ही आप भगवान विष्णु जान पड़ते हैं। नारायण, आपको नमस्कार ! हे जनार्दन, आप किस लिए अपनी माया से मुझे मोहित कर रहे हैं ?"

मनु का वचन सुनकर मत्स्य रूपधारी भगवान ने कहा, "राजन ! मैं दुष्टों का नाश और जगत की रक्षा हेतु अवतीर्ण हुआ हूँ। आज से सातवें दिन समुद्र सम्पूर्ण पृथ्वी को डुबा देगा। उस समय तुम्हारे पास एक नौका उपस्थित होगी। तुम उसी नाव पर विचरते रहोगे। नाव आने के बाद मैं भी इसी रूप में उपस्थित होऊँगा। उस समय तुम मेरी सींग में महासर्पमयी रस्सी से उस नाव को बाँध देना। ऐसा कहकर भगवान मत्स्य अन्तर्धान हो गये और वैवस्वत मनु निर्दिष्ट समय की प्रतीक्षा करते हुए वहीं रहने लगे।

जब समुद्र नियत समय पर अपनी सीमा लाँघ कर बढ़ने लगा, तब वे पूर्वोक्त नौका पर बैठ गये। उसी समय एक सींग धारण करने वाले सुवर्णमय विशाल मत्स्य का प्रादुर्भाव हुआ। उसका शरीर दस लाख योजन लम्बा था। उसकी सींग में नाव बाँध कर राजा मनुने उनसे मत्स्य नाम करण का रहस्य श्रवण किया। इस कथा में ब्रह्म की सर्व व्यापकता प्रकट होती हैं तथा सृष्टि के आरम्भ से प्रलय पर्यन्त मत्स्य का रहना प्रकट होता है। पाश्चात्य विद्वानों के विकासवाद सिद्धान्त का मूल आधार भी यही है।

★

नरसिंह-रूप

भगवान् विष्णु का नरसिंह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप का वध करना और भक्त प्रह्लाद की रक्षा करना—इस उपाख्यान का मूल तत्व है—हिंसा पर अहिंसा की विजय। प्रह्लाद सतोगुण का प्रतीक, सत्य का पुजारी है। हिरण्यकश्यप—तमोगुणी और हिंसा का प्रतीक है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार आकाशीय तारामण्डल में जो शिशुमार चक्र अर्थात् ध्रुव से कम प्रकाश करने वाले दो तारे बीटा तथा गामा हैं। ये ही भारतीय ज्योतिष के अनुसार 'जय और विजय' हैं, जो विष्णु के शाप से बार-बार राक्षस हुए। हिरण्यकश्यप जन्म से राक्षस है और विष्णु का नाम नरसिंह भी है। वेदों में अग्नि का भी एक नाम नरसिंह है।

—o—

वामन भगवान

वैदिक साहित्य में आध्यात्मिक दृष्टि से सबसे शक्तिमान देवता विष्णु का ही एक नाम 'वामन' है, वामतो ह विष्णुरास कहा गया है। जो अपने विराट रूप में आत्मा सहस्र शीर्षा और सहस्रपाद है, अर्थात् वामन वेश में वही दस अंगुलियों के आधार पर खड़ा है। दो चरणों पर जो स्थित है, उसे ही विराट कहा गया। विष्णु के तीन चरण; वाक्, मन और प्राण हैं। वैज्ञानिक विद्वानों ने इनका नाम इस प्रकार दिया है।—वाक् = विज्ञातं, मन = विजिज्ञास्यं, प्राण = अविज्ञातं।

—o—

मयूर वाहन कार्तिकेय

कार्त्तिकेयं प्रवक्ष्यामि अरुणादित्य सम प्रभम् ।
कमलोदर वर्णाभं कुमारं सुकुमारकम ॥
(रूपमण्डन)

गण्डकैश्चिकुरैर्युक्तं मयूरवरवाहनम् ।
स्थापयेत्स्वेष्ट नगरे भुजाद्वादश कारयेत् ॥
चतुर्भुजः खर्वटे स्याद्वने ग्राम द्विबाहुकः ।
दक्षिणे शक्ति पाशञ्च खड्गं वाणं त्रिशूलकम् ॥
(मत्स्यपुराण अ० २६०)

स्वामी कार्तिकेय देवताओं के सेनापति हैं क्योंकि जो सुर विजयिनी शक्ति को धारण कर आसुरी वृत्ति के पुरुषों का दमन कर देश तथा मानव की रक्षा हेतु देश के शक्ति समूह का परिचालन करे, वही सेनापति है और वही देवी शक्ति का अधिकारी है। असुर-विजयिनी शक्ति को कौमारी कहते हैं। कौमारी का वाहन मयूर है। मयूर सर्प का भक्षण करता है। वक्रचाल वालों को भी सर्प कहा जाता है। साधारणतः इन्द्रिय वृत्ति समूह विषय-विमुख विसर्पित भाव से वक्रगति चलता है। कौमारी के साधक विजय प्राप्त करने के लिए मयूर धर्मी हो जाते हैं। मयूर को नीलकंठ भी कहते हैं। भगवान शिव को भी नीलकठ कहते हैं। मयूर के परोंमें अंकित रेखाएँ मनोहर चन्द्रमा की कला की भांति सुशोभित हैं। यमराज एवं काल रूपी सर्प को गले में धारण करने वाले भगवान शिव ही नीलकंठ हैं। मयूर के रूपमें दुष्टों के संहार के लिए वे स्कन्द के वाहन बने हैं। महाकवि जगद्धरभट्ट विरचित स्तुति कुसुमांजलि में विद्वान कवि ने मयूर रूपी शिव की स्तुति की है—

चारु चन्द्रकलयोपशोभितं भोगिभिः सह गृहीत सौहृदम् ।
अभ्युपेत घन काल शात्रवं नीलकण्ठमति कौतुकं स्तुमा ॥

मनोहर चन्द्रमा की कलासे सुशोभित, वासुकि आदि सर्पों के साथ मित्रता करने वाले और कठोर काल (यमराज) के साथ शत्रुभाव रखने वाले भगवान सदाशिव को अद्भुत नील कण्ठ (मयूर) रूप की हम स्तुति करते हैं। कुमार कार्तिकेय का सेनापति पद पर अभिषेक हो जाने के बाद विभिन्न देवताओं ने विभिन्न वस्तुएँ उन्हें अर्पित कीं। वायु ने वाहन के रूप में मयूर भेंट किया। उनका वाहन मयूर है जिसका रंग उज्ज्वल है। मयूर मन मोहक एवं बहुत लुभावना पक्षी है। उसके पंख पर कई रंगों की सुन्दर कलाकृतियाँ अंकित रहती हैं जो सहज ही मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। मयूर की उत्पत्ति मैथुनी सृष्टि से नहीं होती। वह विषय भोग से परे होता है। वर्षा काल में जब मयूर मदमस्त होकर नृत्य करने लगता है, तब उस समय उसका वीर्य भूमि पर गिर पड़ता है। उस गिरे हुए वीर्य को चतुर्दिक खड़ी मोरनियाँ ग्रहण

कर लेती हैं। पुराणों में भी यह स्पष्ट उल्लेख है कि स्वामी कार्त्तिकेय की उत्पत्ति भी स्खलित वीर्य के द्वारा हुई है।

इस कथा का विस्तार महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य 'कुमार सम्भव' में किया है। वर्षा काल में जब मयूर मस्त होकर नृत्य करता एवं बोलता है तो उस समय उसकी बोली सुनकर विरहिणी व्याकुल हो उठती है। मयूर के सम्मुख वक्र चाल चलने वाले विषधर भुजंग भयभीत, बलहीन एवं अन्धे हो जाते हैं। वह उन्हें उदरस्थ कर लेता है। सर्पों के भक्षण करने से जिस प्रकार मयूर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार देवताओं के सेनापति स्वामी कार्त्तिकेय के सम्मुख रिपुदल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कार्त्तिकेय मयूर वाहन का वर्णन शिव पुराण में इस प्रकार है—

> निशुंभः कार्तिकेयस्य मयूरं पंचभिश्शरैः।
> विव्याध वेगेन मूर्छितंस्स निपात ह॥

युद्ध के समय निशुंभ ने कार्तिकेय: वाहन मयूर के हृदय में पाँच बाणों से प्रहार किया जिससे मयूर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। कार्तिकेय की जन्म-कथा की ओर ध्यान दीजिये, कैसा विचित्र वर्णन है जिसके शब्दार्थ पर जनसाधारण के मन में शंकाओं की बाढ़ सी आ जायगी जैसे लक्ष्मी का वाहन उल्लूक, भैरव का वाहन श्वान और शीतला का वाहन गदर्भ होना। किन्तु जब उनके मूल में प्रतीक का विचार करेंगे तो कितनी ऊँची उड़ान और कितना गूढ़ रहस्य मिलता है। स्वामी कार्तिकेय की जन्म कथा कई प्रकार से है, किन्तु आधार एक-सा ही है। शिव महापुराण कुमार खण्ड के अनुसार तारकादि महादैत्यों के वध के लिए देवताओं के प्रार्थना करने पर भगवान शिव ने सिर से स्खलित हुए अपने वीर्य को पृथ्वी पर गिरा दिया। देवताओं की प्रेरणा से अग्नि ने कपोत् के रूप में उसको धारण कर लिया। इस पर पार्वती ने अग्नि को शाप दे दिया जिससे अग्नि और देवता पीड़ित होने लगे। अग्नि ने व्याकुल होकर शंकर से प्रार्थना की। सप्तर्षि में से ६ ऋषि की पत्नियाँ सगर्भ होकर दाह से पीड़ित होने लगीं। उन मुनि पत्नियोंने हिमालय के पृष्ठपर उस शिव-वीर्य को त्याग कर उसे गंगा में प्रवाहित कर दिया। गंगा द्वारा एक सरकन्डे के वन में उस अमोघ वीर्य को त्यागते ही तत्काल बालक का जन्म हुआ जो कार्तिकेय के रूप में देवताओं का सेनापति बना।

आदि कवि वाल्मीकि ने स्वामी कार्तिकेय के विषय में कहा है कि स्वामी कार्तिकेय की उत्पत्ति आकाश गंगा से हुई है। कथा इस प्रकार है कि देवों का कोई योग्य सेनापति न था। अग्नि ने अपने तेज को जन्म देने का विचार स्थिर किया। इसके लिए आकाश गंगा ने नारी का रूप धारण किया परन्तु अग्नि तेज को स्थापित होने पर गंगा ने कहा—मैं इस तेज को पूर्ण रूप से धारण करने में असमर्थ हूँ। अग्निने कहा—तुम इस तेज को हिमालय के समीप छोड़ दो। गंगा द्वारा गर्भ का त्याग होने पर जब वह पुत्र रूप में प्रगट हुआ तो उसे दूध पिलाने के लिए छः कृत्तिकाएँ उपस्थित हुईं। आकाश में कृतिका नक्षत्र में कुल छः तारे हैं। इस लिए उस तेजमयी पुत्र का नाम षडानन पड़ा। आकाश गंगा ने गर्भ प्रसव किया था इसलिए इनका दूसरा नाम स्कन्द हुआ। और कृत्तिकाओं द्वारा पालन-पोषण होने के कारण इनका नाम कार्तिकेय भी पड़ा। स्वामी कार्तिकेय की उत्पत्ति का प्रधान उद्देश्य देव-सेना का अध्यक्ष बनना तथा दानवों को परास्त

करने के लिए है। आकाश गंगा में अग्नि के द्वारा गर्भ स्थापित होना, हिमालय के पार्श्व में गर्भ स्राव होना, पुत्र-रूप में कार्त्तिकेय का उत्पन्न होना, उनका अग्नि के समान चमकना और ६ कृत्तिकाओं का दूध पीकर एक ही दिन में शत्रुओं का संहार करना इस उपाख्यान का समाधान भौतिक दृष्टि से होना सम्भव नहीं। इसका समाधान वैदिक विद्वान पंडित रघुराज शर्मा ने इस प्रकार किया है कि यह ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों के आधार पर युगों की गणना का ऐतिहासिक कथानक है। जब सूर्योदय के पूर्व आकाश गंगा क्षितिज के नीचे थी और सूर्य के पश्चात् ही उदित होने लगती थी तब हिमालय के निवासियोंने इसे हिमालय के पार्श्व में देखा था। उस समय कृत्तिकाएँ भी वहीं उपस्थित थीं। जिस समय सूर्य कृत्तिका के साथ उदित होता था उस समय वसन्त सम्पात कृत्तिका में ही था। उपर्युक्त वर्णन उस समय से कुछ पूर्व का है। अर्थात् सूर्य जब स्पष्ट नहीं, किन्तु गर्भ में था, तब का है। विद्वज्जन उस पर विचार करते हुए प्रमाण में शतपथ ब्राह्मण के इस वाक्य को उद्धृत करते हैं—

कृत्तिका स्वादधीत।

एताह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते वन्यवन्ते
सर्वणी हवा अन्यानि न अत्राणि प्राच्ये दिशश्चावन्त्र।

अश्विनी कुमार

वैदिक ग्रन्थों में अश्विनी, कुमार देवताओं के वैद्यराज हैं। इन्होंने जीर्ण-शीर्ण च्यवन ऋषि को फिर से युवक बना दिया था। अश्विनी कुमार देवलोक के चिकित्सक हैं। अथर्वण ऋषि के ब्रह्मज्ञानी शिष्य दध्यङ ऋषि से अश्विनी कुमारों ने ब्रह्म ज्ञान की जिज्ञासा की, परन्तु दध्यङ ऋषि ने अश्विनी कुमारों को वैराग्यादि साधनों के अभाव के कारण इन्हें अनधिकारी जानकर ब्रह्म विद्या का ज्ञान देने से इनकार कर दिया। एक समय इन अश्विनी कुमारों ने अभिमान के वशीभूत होकर इन्द्र का अपमान भी कर दिया था, जिससे रुष्ट होकर इन्द्र ने इन्हें यज्ञ भाग से बहिष्कृत कर दिया था। तब से अश्विनी कुमारों को किसी यज्ञ में भाग नहीं मिला। इससे क्रोधित हो अश्विनी कुमारों ने औषधि द्वारा तथा अन्यान्य उपायों द्वारा इन्द्र के विनाश की आज्ञा दध्यङ ऋषि से माँगी।

दध्यङ ऋषि महान पुरुष थे। उन्होंने इस घृणित कार्य की निन्दा करते हुए कुमारों को अन्यान्य शान्ति उपायों द्वारा काम क्रोध को त्याग कर उत्तम उपायों द्वारा सफलता प्राप्त करने की सम्मति दी और कहा कि यदि तुम लोग शुद्ध हृदय हो, दोषों से रहित हो, तो मैं तुम्हें अधिकारी पाकर दुर्लभ ब्रह्म विद्या का उपदेश दूँगा। तब गुरु की आज्ञा से अश्विनी कुमारों ने च्यवन ऋषि के नेत्र अच्छे कर दिये और च्यवन ऋषि ने अपने तपोबल से उन्हें यज्ञ में भाग लेने का अधिकारी घोषित कर दिया।

इस प्रकार अश्विनी कुमारों को अपने कार्य में सफलता प्राप्त करने पर एक दिन दध्यङ ऋषि के आश्रम में इन्द्र पहुँच गये। इन्द्र को देखकर ऋषि ने कहा, आप मेरे अतिथि हैं। आपका सत्कार किस प्रकार करूँ?" इन्द्र ने कहा कि मुझे ब्रह्म विद्या का उपदेश कीजिए। दध्यङ ऋषि बड़ी द्विविधा में पड़ गये। वचन देकर इन्हें उपदेश नहीं देते हैं तो वाणी असत्य होती है और ये उपदेश लेने के अधिकारी नहीं हैं, कारण इन्द्र भोगी हैं।' अन्ततः ऋषि ने वचन को सत्य रखने के लिए उपदेश देना निश्चय कर लिया।

ऋषि ने अपने वचन की रक्षा हेतु मृत्यु को सर्वोत्तम समझा, क्योंकि एक न एक दिन इस शरीर का नाश अवश्य ही होता है। इस प्रकार उन्होंने अश्विनी कुमारों को उपदेश देना निश्चय कर लिया। इधर जब अश्विनी कुमारों को यह ज्ञात हो गया कि इन्द्र ने ऋषि को इस प्रकार वचन बद्ध कर लिया है, तब अश्विनी कुमारों ने कहा, महाराज, हम लोगों को आप कैसे उपदेश देंगे? क्या आपको इन्द्र का भय नहीं है? ऋषि ने कहा, कर्मवश शरीरधारी के मृत्यु की निश्चयता ने परमार्थ रूप सत्य की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी है। तब कुमारों ने कहा, 'भगवन, आप जरा भी भय न करें। हम एक कार्य करते हैं, जिससे न आपकी मृत्यु होगी और न हमें ब्रह्मविद्या से वंचित होना पड़ेगा। हम पृथक-पृथक हुए अङ्गों को जोड़कर जीवित करने की विद्या जानते हैं। पहले हम इस घोड़े का सिर काट कर फिर आपका सिर उतार कर घोड़े के धड़ से जोड़ देते हैं। आप घोड़े के सिर से हमें उपदेश दीजिए। फिर जब इन्द्र आकर आपका घोड़े का सिर उतार देगा,

तो हम पुनः उसका सिर उतार कर आपके धड़ से जोड़ देंगे। और उसका घोड़े का सिर उसके धड़ से जोड़ देंगे। इससे न तो घोड़ा मरेगा और न आपकी मृत्यु होगी।

ऋषि ने अश्विनी कुमारों के वचन को सुन कर उन्हें भली-भांति ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया। इन्द्र ने यह समाचार सुनते ही आकर ऋषि के धड़ पर लगा घोड़े का सिर उतार दिया। पश्चात् अश्विनी कुमारों ने घोड़े से जुड़ा हुआ ऋषि के सिर को उतार कर ऋषि के धड़ से जोड़ दिया। यहाँ प्राण और अपान का ही नाम अश्विनी कुमार है। एक वैदिक स्तुतिमें कल्याणकर्ता परमात्मा से कामना की गयी है कि तुम देवताओं के भिषक् अश्विनी कुमारों द्वारा अपनी शक्ति से मृत्यु को हमसे दूर करो। हे प्राण और अपान, इस शरीर में बराबर संचरण करते रहो इस शरीर को त्याग कर मत जाओ। तुम दोनों जोड़ीदार (रुद्रजो) बनकर सखा की भाँति रहो। अश्विनी कुमारों के विषय में विद्वानों की यही व्याख्या है कि प्राण और अपान ही सदा साथ रहने वाले अश्विनी हैं। अश्विनी की एक संज्ञा नासत्य है, यानी नासिकाओं में संचरण करने वाले श्वास-प्रश्वास। इसका तात्पर्य प्राणायाम क्रिया से है।

तुम्बुरु

गन्धर्वः गंधं संगीत-वाद्यादि-जनित प्रमोदं अर्वति (संगीत वाद्य आदि से उत्पन्न आनंदको 'गंध' कहते हैं।) प्राप्नोतीति। इस गंधको प्राप्त करने वाला गन्धर्व कहा जाता है। 'हाहा हूहू एर्वंव माद्यां गन्धर्वास्त्रि दिवौकसाम्।, अमरकोश–हाहा हूहू तुम्बुरु ये देवराज (ब्रह्मलोक) के सात प्रधान संगीतज्ञों में प्रमुख हैं। इनकी जाति गन्धर्व है। इन का देश गान्धार है। इनका नायक चित्रसेन है। कहा जाता है कि तुम्बुरु का तम्बूरा और नारद की वीणा ही आज तक संगीत का संग दे रही है। वाद्य तो बहुत बने, किन्तु स्वरों पर सर्वाधिकार तम्बूरा और वीणा का ही है। विश्वावसु स्वयं संगीत के आचार्य थे। वैजयन्ती कोषमें लिखा है कि विश्वावसु की वीणा का नाम बृहती था। तुम्बुरु की कलावती, नारद की महती और सरस्वती की कच्छपी वीणा थी। गन्धर्व के गुण और संगीत कलाका वर्णन कविराज श्री रत्नाकर शास्त्री ने 'भारत के प्राणा 'आर्य' नामक ग्रन्थ में विस्तार पूर्वक किया है। उनका कहना है कि सरस्वती भी गान्धार की ही थी। गान्धार देश पहले कश्मीर क्षेत्र में था। प्राचीन काल में संगीत विद्या का जन्म स्थान होने से इस प्रदेश का नाम गान्धार पड़ा। इसी कारण इसके नाम का एक स्वर भी 'गान्धार' है। किन्नरों को गायक माना गया है, किन्तु षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद इन सातों स्वरों के स्वरकार गन्धर्व ही थे। कहा जाता है कि गन्धर्वों ने ऋग्वेद को स्वरों की सात तन्त्रियों पर कसकर 'साम' की सृष्टि की। इसी गुण विशेष के कारण गन्धर्व को देवताओं में स्थान मिला और गन्धर्वों में प्रधान तुम्बुरु हैं। तुम्बुरु का मुख घोड़े का है, हाथ में तम्बूरा है। तुम्बुरु के स्वरूप की कल्पना मानव रूपमें की गयी है। किन्तु उनका मुख अश्व है। गन्धर्व तुम्बुरु का मुख घोड़े का क्यों? घोड़ेका एक नाम गन्धर्व भी है—अर्वा गन्धर्वोऽश्वः सप्ति वाजी तुरग मस्तुरगः तार्क्ष्यो हरिस्तु रंगा न्युयु रूमतो घोटक हय औवाह। सप्तस्वरों में अश्व का स्वर धैवत है। शब्द कल्प द्रुम में स्वर्ग के गायकों के प्रमुख सात नाम मिलते हैं।

(१) स्वर्ग गायक तुम्बुरु प्रभृति (२) किम्पुरुष, (३) तुरंगवदनः (४) मयुः (५) गति-मोदी (६) अश्वमुख (७) हरिण नर्तक।

महर्षि पाणिनि के अनुसार उदात्त और अनुदात्त स्वरों के समाहार से स्वरित का उद्भव होता है। प्रातिशाख्यमें उदात्त को निषाद और गान्धार स्वरों का, अनुदात्त को ऋषभ तथा धैवत का तथा स्वरित को षडज, मध्यम और पंचम का बोधक कहा गया है। अतएव सम्भव यह है कि प्रकृति के विभिन्न पशु-पक्षियों की स्वरलहरी से अनुप्राणित होकर उनके स्वरों के अनुकरण में संगीत के सप्त स्वरों का विकास हुआ।

वृषाकपि हनुमान

भारतीय, साहित्य में पुराण और महाकाव्यों में वाल्मीकि रामायण, रामचरित मानस, प्रमुख ग्रन्थों में जिनमें राम और कृष्ण के साथ वीरता के प्रतीक महावीर हनुमान हिन्दुओं के प्रमुख देवता हैं, जिनसे हमें बल पौरुष, पराक्रम की प्रेरणा मिलती है।

महावीर हनुमान के गुण और महिमा का वर्णन :— ऐसा कोई भी भारतीय साहित्य नहीं है जिसमें इनका गुणगान न हो। महावीर हनुमान को भी राम, कृष्ण आदि अन्य अवतारों की भाँति शंकर का अवतार माना गया है। हनुमानजी के पराक्रम की महिमा, विस्तार, रामचरित मानस के द्वारा जन-जन के हृदय में समा गयी है और गोस्वामी तुलसीदास के तो वे इष्टदेव ही थे। पुराण में हनुमानजी के सम्बन्ध में अनेक वर्णन मिलते हैं, जिनमें उनसे संबन्धित कथा के अनुसार अनेक नाम भी हैं। जैसे हनुमान, मारुति, पवनसुत, अञ्जनी नन्दन, संकट मोचन आदि विशेष नामों में एक बड़ा ही रोचक और प्रभावशाली नाम 'वृषाकपि' है। वृषाकपि की जन्म-कथा पुराणों में अंजना और पवन से ही है।

वृषाकपि हनुमान का दक्षिण भारत में अत्यधिक मान है। वृषाकपि को भक्त लोग हरि-हर अर्थात् इन्हें शिव और विष्णु, अग्नि, सूर्य, इन्द्र का प्रतीक मानते हैं, जिनमें तेजस्विता, मनस्विता, यशस्विता प्रतीत होती है। वृषाकपि या वृषकपि का शाब्दिक अर्थ है वीर्यवान, सत्यवान, महा पराक्रमी वानर।

ज्ञान मंडल का प्रामाणिक वृहत हिन्दी शब्दकोश पृष्ठ १३०१ तथा नालन्दा विशाल शब्द सागर पृष्ठ १२९८ में वृषाकपि का उल्लेख किया गया है। वृषाकपि शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि वृषा पुल्लिंग के लिए द्रविण शब्द, बाण है और यह शब्द कन्नड़ी, तमिल और मलयालम तीनों भाषाओं में बोला जाता है। तेलगू में इसके बदले मग और पोट्ट बोलते हैं। कपि बन्दर के लिए इन चारों भाषाओं में दो शब्द हैं, १ कुरंगु, २ मंडी, बन्दर वाची शब्द कुरंगु तमिल भाषा का है, शेष तीनों में कुरंग, हिरन को कहते हैं। मलयालम में इस शब्द के दो रूप हैं :—विशेषकर बन्दरिया को कहते हैं। मलयालम में मंडी काले मुँह के बन्दरों के अर्थ में बोला जाता है। कन्नड़ी और तेलगू में मंडी से युक्त शब्दों में हिन्दी, लोक अर्थ में आता है।

यह अर्थ विचार देखने के योग्य है। कन्नड़ी में बन्दर के लिए दो शब्द हैं, कंटि और तिम्मा ये दोनों नये हैं। यह बात सर्व सम्मत है कि तमिल में प्राचीन शब्द बहुत हैं। अयोध्या का इतिहास ले० श्री अवधवासी लाल, सीताराम बी० ए० के अनुसार।

वृषाकपि के लिए कहा गया है कि बाण और मंडी को मिलाने से वृषाकपि के अर्थ का द्रविड़ शब्द बनता है और वृषाकपि उसका संस्कृत अनुवाद होता है। बाण मंडी का संस्कृत रूप हुआ हनुमंत। द्राविड़ शब्दों के संस्कृत रूप बनाने में बहुधा एक "ह" पहले जोड़ दिया जाता है, इसके कई उदाहरण हैं।

जिस प्रकार उत्तर प्रदेश में वैष्णवों का प्रमुख तीर्थ अयोध्या है जहाँ हनुमान का हनुमान-गढ़ी (प्रमुख मन्दिर) है। उसी प्रकार दक्षिण में गोदावरी और फेना (पेनगङ्गा) तथा रेवा के संगम तट पर वृषाकपि का मन्दिर है। यह वृषाकपि, हनुमान, मार्जार और अञ्जक नाम से प्रसिद्ध है। पूरे दक्षिण में इनका बड़ा मान है, इस तीर्थ का वर्णन ब्रह्मपुराण में है। वृषाकपि की उत्पत्ति की कथा ऐसे तो सभी पुराणों में एक-सी मिलती-जुलती है। यह कथा बड़ी रोचक है जिसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है। केशरी की दो स्त्रियां थीं अञ्जना और अद्रिका। दोनों पर्वत पर रहती थीं। वहां एक बार अगस्त्य मुनि पहुँच गये। दोनों ने आदर-सत्कार किया। मुनि ने प्रसन्न होकर दोनों को एक-एक पुत्र होने का वरदान दिया।

वायु से अञ्जना के हनुमान पुत्र हुए और निर्मतिदेव से अद्रिका के अद्रि नामक पिशाच राज पुत्र हुए। ये दोनों गोदावरी में स्नान करने पर अपने पूर्व जन्म के शाप से मुक्त हो गये। वहां गोदावरी के जिस तट पर अद्रि ने अञ्जना को स्नान कराया था, उसका नाम आंजना पैशाचक पड़ा और जहां हनुमानजी ने अद्रिका को स्नान कराया था उस स्थान का नाम मार्जार हनुमान और वृषाकपि पड़ गया। आगे चलकर वृषाकपि तीर्थ की महत्ता का वर्णन इस प्रकार से है।

दैत्यों का पूर्वज हिरण्यक जो बड़ा ही बलवान और पराक्रमी था जिसने अपनी तपस्या के बल से देवतावों को आधीन कर लिया था। उसका पुत्र महाशनि भी बड़ा ही प्रतापी था। इसने एक बार युद्ध में इन्द्र को पराजित कर अपने हस्तिशाला के हाथियों के साथ बांधकर अपने पिता को भेंट कर दिया था। पिता ने इन्द्र को बन्द कर रखा था। पीछे महाशनि ने वरुण पर भी आक्रमण कर दिया, परन्तु वरुण ने उससे सन्धि कर ली। इन्द्र के बन्दी हो जाने से अन्य देवतावों ने अति दुःखी होकर विष्णु से सहायता मांगी। विष्णु ने उत्तर दिया कि वरुणदेव की सहायता के बिना हम कुछ नहीं कर सकते। तब देवता लोग वरुण के पास गये। वरुण के कहने से महाशनि ने इन्द्र को छोड़ तो दिया, परन्तु उनको फटकारते हुए कहा कि आज से तुम्हें वरुण को अपना गुरु मानना पड़ेगा। इस पर इन्द्र को बड़ा खेद हुआ, किन्तु वे चुप हो अपने-अपने स्थान को चले आये। घर आकर उन्होंने इन्द्राणी से जब सारी घटनायें कहीं, तब इन्द्राणी ने कहा कि हिरण्य तो हमारा चाचा लगता है, फिर भी मैं अपने चचेरे भाई महाशनि की मृत्यु का उपाय बताती हूं। तपस्या और जप से सब कुछ हो सकता है। तुम बैंकवन में शिव और विष्णु की आराधना करो। देवराज इन्द्र ने शिव की पूजा की, शिव ने कहा, हे इन्द्र, तुम विष्णु की भी आराधना करो इस पर कुछ देर में इन्द्र और इन्द्राणी ने देखा, एक विलक्षण मूर्ति जल से प्रकट हुई जो देखने में शिव और विष्णु दोनों स्वरूप संयुक्त रूप में है। इस पौराणिक—कथा के रहस्य का वैदिक आधार इस प्रकार है—

ऋग्वेद में वृषाकपि—ऋग्वेद भाष्य दशम मण्डल चौथे अध्याय ८६ वे सूक्त में वृषाकपि का उल्लेख इस प्रकार आया है।

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।
नो अह प्रविन्दस्यन्यत्र सोम पीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः अ० ७। सू० ८६॥२॥

हे ऐश्वर्यवान न; प्रभो तू तो परे ही होता जा रहा है, यह बात उस बलवान सर्व सुखवर्षी प्रभुको प्राप्त करने के लिए यत्न करने वाले और उससे भय मानने वाले उपासक आत्मा के लिए बहुत ही व्यथाकारी है। हे जीव, समस्त संसार से वह परमैश्वर्यवान् प्रभु ही उत्कृष्ट है। अपनी आत्मा के द्वारा परम रसपान के लिये उस प्रभु से अतिरिक्त कहीं और प्रकृति आदि पदार्थ में तुझे निश्चय ही अवसर प्राप्त न होगा।

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।
यस्मा इरस्यसीदु न्वार्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ३॥

हे प्रभो, यह बलवान एवं सुख की वर्षा करने वाला परम प्रभु में सुख-रसों का पान करने द्वारा साधक प्रभु के गुणों से आकृष्ट और स्वतः साधनादि द्वारा शुद्ध चित्त और उसको खोजने वाला होकर तुझको लक्ष्यकर कौन सी साधना पोषणा और वृद्धि से युक्त ऐश्वर्य देता ही जाता है। वह परमेश्वर ही सबसे उत्कृष्ट है। जिसकी महिमा अपार है।

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वान्वस्य जम्भिषदपि कर्णे, वाराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ४॥

हे ऐश्वर्यवान प्रभो। जम्भि सर्व सुख वर्षी प्रभुकी ओर जाने वाले आत्मा की तू सब प्रकार से रक्षा करता हैं इसके कर्म वा इन्द्रियगण पर स्वाहादिवत अन्न आहुति को चाहने वाला देह और लोभ आदि अधिकार कर लेता हैं। परन्तु वह परमेश्वर सबसे ऊँचा और सब प्रकार के संकटों से पार उतारने वाला है।

इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तत्रैव च वृषाकपम्।
फेनायाः संगमो यत्र हनूमतं तथैवाच॥ १॥ ब्रह्मपुराणम्

अब्जकं चापि यत्प्रोक्तं यत्र देवस्त्रिविक्रमः।
तत्र स्नानं च दानं पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ २॥

तत्र वृत्ता न्यथाऽऽख्यास्ये गङ्गाया दक्षिणे तटे।
इन्द्रेश्वरं चोत्तरे च श्रृणु भक्त्या यतव्रतः॥ ३॥

हनुमदुपमाता वै यत्राऽऽप्लवनमात्रतः।
मार्जारत्वादभून्मुक्ता विष्णुगङ्गाप्रसादत॥ ९॥

मार्जारं चेति तत्तीर्थं पुरा प्रोक्तं मया तव।
हनूमतं च तत्प्रोक्तं तत्राऽऽख्यानं पुरोदितम्॥ १०॥

वृषाकपं चाब्जकं च तत्रेदं प्रयतः श्रृणु।
हिरण्य इति विख्यातो दैत्यानां पूर्वजो बली॥ ११॥

अम्भसा पुरुषो जातः शिवविष्णुस्वरूपधृक।
चक्रपाणिः शूलधरः स गत्वा तु रसातलम्॥ ९८॥

निजघान तदा दैत्यमिन्द्रशत्रुं महाशनिम।
सखाऽभवत्स चेन्द्रस्य अब्जकः स वृषाकपिः॥ ९९॥

ब्रह्मपुराण अध्याय १२९ गौतमी महात्म्य कथा वृषाकपि तीर्थ महात्म्य पृष्ठ ८९१ सेठ मनसुखराम मोर द्वारा प्रकाशित गुरु ग्रन्थ माला, कलकत्ता।

विवि स्थोऽपि संदा चेन्द्र स्तमन्वेति वृषाकपिम्।
कुपिता प्रणयेना भूदन्यासक्तं विलोक्य तम् ॥ १०० ॥
शचीं तां सावन्तयन्नाह शतमन्युर्हसन्निदम्।
पिया तष्टा निर्मे कपिर्व्यक्ता व्यद्वुषत।
शिरोन्वस्यराबिन सुगंवुष्कृते भुवं (ऋ १०' ८६।५॥

वेदों में बादल के लिए जो नाम आये हैं उनमें वृषभ, महिष मृग और कपि शब्द भी बादल के लिये प्रयुक्त हुए हैं, ऋग्वेद १०।१२३।४ में आया है कि मृगस्य घोषं का अर्थ बादलकी गर्जना ही है।

जैसा कि वैदिक संम्पत्ति के विद्वान लेख पण्डित रघुनन्द शर्मा महोदय का कहना है। बादल का ही नाम वृषाकपि है। वृषाकपि को एक स्थान पर मेघाच्छन्न सन्ध्याकालीन सूर्य को वृषाकपि माना है अर्थात यहाँ वृषाकपि का अलङ्कार वर्षा ऋतु की सन्ध्या कालका बादल युक्त सूर्य का प्रातः और सायंकाल का दृश्य, अनेको प्रकार से वर्णन किए जाते हैं। वृषाकपि का अलङ्कार पुराणों में हनुमान की उत्तपत्ति के साथ जोड़ दिया गया है।

महाभारत हरिवंश पुराण में वृषाकपि का वर्णन इस प्रकार है।

सुरभी कश्यपाद रुद्राने का दश विनिर्ममे।
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ॥ ४९ ॥
अजेक पार्दाहि बुर्दन्य स्त्वष्टारुद्राश्च्य भ्रभारत।
त्वष्टश्चैवात्मजः श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः ॥ ५ ॥

दक्षने कश्यप मुनि को जो तेरह कन्याएँ दी थीं, उनमें से सुरभि की संतान का वर्णन करते हुये कहा है। तप में मग्न हुई सुरभि ने महादेव जी से वर पाकर कश्यप जी के द्वारा ग्यारह रुद्रों को उत्पन्न किया था। भारत वंशी राजन्! अजैकपाद अहिर्वुदनय त्वष्टा तथा रुद्र ये सब सुरभिकी संताने हैं। त्वष्टा के महायशस्वी और श्रीमान पुत्र का नाम विश्वरूप था।

हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः।
वृषाकपिश्चशम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथ ॥ ५१ ॥
मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली च विशाम्पतें।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रि भुवनेश्वराः ॥ ५२ ॥

अर्थात् हे राजन! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित वृषाकपि, शम्भु कपर्दी रैवत, मृगव्याध ये तीनों सर्प और कपाली भुवनों के ईश्वर ग्यारह रुद्र कहे गये हैं। पुराण वर्णित इन रुद्रों के सैकड़ों रूप बताये गये हैं। इनसे चराचर लोक भरे हुए हैं। आगे कश्यप की स्त्रियों के अदिति, दीति, अरिष्टा सुरमा विशा सुरभि विनता ताम्र क्रोध वशा इरा कद्रु इनके संतान चाक्षुष मन्वन्तर में सुषित नाम वाले वारह श्रेष्ठ देवता थे जो मन्वन्तर के आने पर वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भ में सब प्राणियों का कल्याण करने के लिये सब मिलकर अदिति में प्रवेश करें इससे प्रतीत होता है वृषाकपि जगत कल्याणकर्ता तथा दुष्टों का संहार करता, उन ग्यारह रुद्रों में से एक रुद्र है, जो आकाशीय नक्षत्रों में रहकर हर मन्वन्तर में हमारा कल्याण करता है।

—:०:—
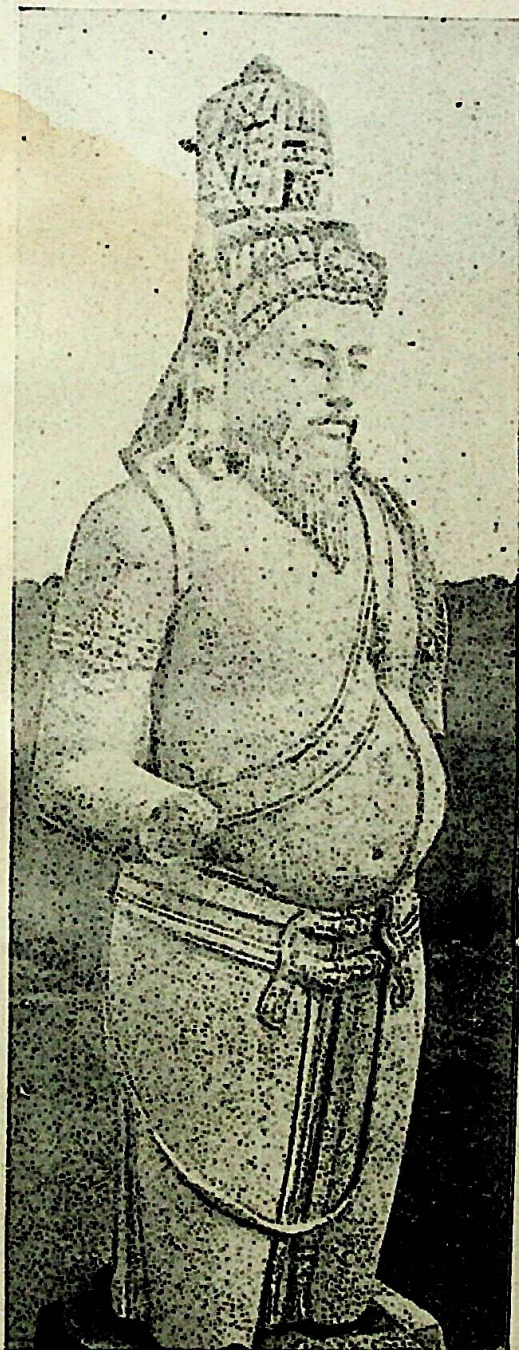
अगस्त

चण्डी नैनन साउथ क्याडं बुक आर्ट ऑफ जावा से साभार

ऋषि अगस्त्य

'उदित अगस्त्य पंथ जल सोखा'

अगस्त्य ऋषि से सम्बन्धित पुराणों में दो उपाख्यान प्रसिद्ध हैं, जो बड़े मनोरंजक और रहस्यमय हैं। प्रथम में अगस्त्य मुनि द्वारा समुद्र के सोखने का वर्णन है और दूसरे में अगस्त्य के आदेश पर विंध्य पर्वत का अपना विस्तार रोकना है।

एक समय सूर्य से पर्वत ने कहा, हे तेजस्वी सूर्य, जिस प्रकार तुम प्रतिदिन मेरु पर्वत की परिक्रमा करके उसका सम्मान करते हो उसी प्रकार मेरी भी परिक्रमा किया करो, जिससे मैं भी सम्मानित होऊँ। इसपर आदित्य ने कहा—'सृष्टि के आरम्भ काल से ही मैंने अपना मार्ग निश्चित कर लिया है। अब उसे बदलना सम्भव नहीं है। इस उत्तर से विन्ध्य पर्वत अत्यन्त कुपित होकर सूर्य का मार्ग रोकने के लिए अपनी ऊँचाई बढ़ाने लगा, जिससे सर्वत्र अन्धकार होने लगा। देवताओं ने विन्ध्य पर्वत से अपनी बढ़ती हुई ऊँचाई रोकने की प्रार्थना की, किन्तु विन्ध्य पर्वत ने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया।

निराश देवगण अगस्त्य मुनि के पास जाकर प्रार्थना करने लगे कि महाराज, यदि विन्ध्य पर्वत के विस्तार को रोका न गया तो बड़ा अनर्थ होगा। प्रार्थना सुनकर अगस्त्य ऋषि ने कहा, देवगण आप चिन्ता न करें, मैं उसे रोकने का यत्न करता हूँ। यह कहकर अगस्त्य विन्ध्य पर्वत के पास गये। विन्ध्य पर्वत ने अपने गुरु को देखकर साष्टांग प्रणाम किया और पूछा, आपकी क्या आज्ञा है?

अगस्त्य ने कहा गिरिराज, मैं तुम्हें लांघकर दक्षिण जा रहा हूँ। तुम मेरे लौटने तक इसी प्रकार प्रतीक्षा करना। विन्ध्य ने वचन दिया कि मैं आपके दक्षिण से लौटने तक इसी प्रकार रहूँगा। इसके बाद अगस्त्य ऋषि दक्षिणकी ओर जाकर वहीं बस गये। अगस्त्य दो हैं। एक आकाशीय नक्षत्र है और दूसरा मानव शरीर धारी ऋषि अगस्त्य, जिस अगस्त्य का यहाँ वर्णन है, वह आकाशीय नक्षत्र है, जो ध्रुवतारा की परिक्रमा करता है। जब चातुर्मास समाप्त हो जाता है, यानी वर्षा का अन्त हो जाता है, तब वह दिखलाई पड़ता है।

श्री गोस्वामी तुलसी दास की अर्धाली :—"उदित अगस्त्य पन्थ जल सोखा" भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है। यहाँ पर अगस्त्य के उदय के बाद अन्तरिक्ष में जल का न रह जाना ही अगस्त्य द्वारा समुद्र का सोखना है। वास्तविकता यह है कि अन्तरिक्ष में जल ले जाने वाली शक्ति का ही नाम अगस्त है। इसी प्रकार विन्ध्य पर्वत का झुका रहना और [illegible] की दक्षिण यात्रा का रहस्य यह है कि विन्ध्य गिरि दक्षिण की ओर झुका हुआ है और अगस्त्य भी दक्षिण दिशा में उदित होता है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि विन्ध्य पर्वत का दक्षिण में और झुकान होता तो वह इतना ऊँचा होता कि हिमालय भी उससे छोटा दिखलाई पड़ता जिससे सूर्य का प्रकाश न मिलता।

यहाँ हिमालय की महत्ता से विन्ध्य की ईर्ष्या और दक्षिण दिशा में उसका झुकाव मानो अगस्त्य को प्रणाम कर रहा है, यही उपाख्यान का आधार है।

—:o:—

श्री राम

श्रीराम के उपासक, श्रीराम को परात्पर ब्रह्मरूप मानकर उनके द्वारा सृष्टि की रचना और लय होना मानते हैं। श्रीराम रूप में परब्रह्म की भक्ति के प्रचारकों में श्री सम्प्रदाय के आचार्य रामानुज, श्री रामानन्द, गोस्वामी तुलसीदास आदि प्रधान रहे हैं।

भगवान् श्रीराम शब्द की व्याख्या करते हुए वैष्णव में पं० रामाचार्य ने अपने 'उपास्य देव' ग्रन्थ में कहा है—

"रमन्ते योगिनोऽन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम पदेनासौ परं ब्रह्माभिधियते॥"

अर्थात् जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्मा में योगी लोग रमण करते हैं, उस परमब्रह्म को श्रीराम पद से पुकारते हैं।

एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार 'रमते योगिषु असौ रामः।' अर्थात् जो योगियों में रमण करता है, उसको राम कहते हैं। जो सम्पूर्ण चर तथा अचर में निवास करे उसे 'राम' कहते हैं अथवा 'स्वेनैव स्वस्मिन् सर्वान् रमयतीति रामः।' यानी अपने से ही अपने में जो सबको रमण करावे, उसे श्रीराम कहते हैं।

स्वयं भगवान् ने भी कहा है कि 'ददामिबुद्धि योगं तं येन मामु पश्यन्ति।' इससे समस्त चेतन और अचेतन के रमण कराने वाला होने से श्रीराम विष्णु सूर्य के अंश हैं। 'रामचरित मानस' के श्रीराम को भले ही कुछ लोग केवल ऐतिहासिक पुरुष के ही रूप में देखते हैं, परन्तु ऐसे भी विद्वान मनीषियों की कमी नहीं, जिन्होंने भगवान् श्रीराम को वैदिक आधार पर अवध के दशरथी राम में परमब्रह्म का दर्शन पाया है। गोस्वामीजी के 'मानस' के सभी पात्र वैदिक देवता हैं। गोस्वामी जी ने स्वयं इस शंका का निवारण किया है।

नानापुराण निगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्य तोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषानिबद्धमति - मंजुलमातनोति॥

× × ×

तदपि संत मुनि वेद पुराना।
जस कछु करहिं स्वमति अनुमाना॥
तस मैं सुमुखि सुनावउं तोही।
समुझि परई जस कारण मोही॥

इस मर्म का भेद 'मानस मर्मज्ञ व्यास पं० रामकिंकर जी ने किया है। उन्होंने अपने 'मानस मुक्तावली' नामक ग्रन्थ में अकाट्य तर्क द्वारा मानस के राम का दर्शन के साथ ही नाना प्रकार की शंकाओं का निवारण किया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है—मानस के राम केवल ऐतिहासिक पात्र नहीं हैं।

गोस्वामीजी ने भी मानस में कई स्थानों पर सगुण राम को निर्गुण के अभेद को दूर करने के लिए कहा है—

"सब कर परम प्रकाशक जोई,
राम अनादि अवधपति सोई।"

इस वचन से स्पष्ट हो जाता है कि गोस्वामीजी के राम परब्रह्म को छोड़कर दूसरा राम नहीं है। मानस के श्रीराम के रूप-रहस्य का भेद न जाननेवाले और जाननेवालों में क्या अन्तर है। इस प्रकार इन पंक्तियों पर ध्यान दें—

जे श्रद्धासंबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्हकहं मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥

गोस्वामी जी द्वारा निर्गुण ब्रह्म की उपासना

'मानस' के अनुसार सगुण ब्रह्म राम में और निर्गुण में कोई भेद नहीं है। वे निरंतर निर्गुण ब्रह्म की उपासना की पुष्टि कर रहे हैं।

निरगुण रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

\+ \+ \+

जिनह के रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी॥

गोस्वामीजी का निर्गुण, ब्रह्म की उपासना का विरोधी नहीं है। उन्होंने विश्वास के साथ बार-बार कहा है कि मानव नहीं, मानव देह में बसनेवाला ब्रह्म राम है—

जड़ चेतन जग जीव जग
सकल राम मय जानि।
बंदउँ सब के पदकमल
सदा जोरि जुग पानि॥

अतः ब्रह्म यद्यपि शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गन्ध से शून्य हैं तथापि भारतीय वाङ्मय में उसके विविध रूपों का वर्णन मिलता है। ब्रह्मसत्ता के दो रूप मान्य हैं—प्रकृति एवं विकृति। अव्यक्त, अदृष्ट एवं अलक्ष्य रूप प्रकृति है। विकृति उनका साकार रूप है। सगुण रूप के उपासक भक्त इसी रूप की पूजा-अर्चना करते हैं।

सन्त तुलसीदासजी ने 'मानस' की रचना सम्प्रदायविशेष चलाने की दृष्टि से नहीं की, बल्कि उन्होंने 'मानस' को विशुद्ध रूप से आत्मतुष्टि के लिए ही लिखा। उनके उपास्य देव श्रीराम सर्वशक्ति और सर्वगुण से सम्पन्न परब्रह्म विष्णु के अवतार हैं।

दशरथ :—राम के पिता दशरथ अग्नि के प्रतीक हैं। ऋग्वेद में अग्नि को भी रथा, रथी तथा दश के साथ या दश रथ पर आने वाला; दस अंगुलियों से मथने पर अरणि (अरण्य) से उत्पन्न होने वाला 'दशरथ' कहा गया है। वैदिक साहित्य में स्पष्ट लिखा है कि यज्ञरूपी विष्णु का आधार अग्नि है, जो स्वयं सूर्य की किरणें दसों दिशाओं में जाने के कारण ही दशरथ हैं।

श्रीराम की माता :—विश्वव्यापी, विश्वपोषक 'सूर्य' (विष्णु) के चार अंशों की तीन माताएं हैं। यही तीन माताएं मानस की कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा हैं।

राम के भाई—लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न ये सर्वव्यापी विष्णु के ही अंश हैं। मंगल का निधान होने से लक्ष्मण नाम है, श्री भरत—

विश्व भरण-पोषण कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई॥ (मानस)

शत्रुघ्न—शत्रुहन्ता होने से राम शत्रुघ्न के रूप में हैं। श्रीराम द्वारा धनुष तोड़ने की घटना का प्रमुख उद्देश्य है वैष्णव धर्म की शैव धर्म पर महत्ता स्थापित करना। रामायण की क्था वस्तुतः वेदोक्त प्राकृतिक देवी-देवताओं के वर्णन रूपक में हैं।

श्रीराम भक्त श्री मधुराचार्य का मत:—श्रीराम और माता जानकी में वही सम्बन्ध है जो पुरुष और प्रकृति में है। श्रीसीता मूल प्रकृति हैं और श्रीराम आदिपुरुष। 'साकेत' प्रकृति के साथ पुरुष की नित्य क्रीड़ा का प्रतीक रूप है। उनका सम्बन्ध नित्य है। सीता के बिना राम और राम के बिना सीता के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती।

श्रीराम ब्रह्म हैं तो सीता उनकी आल्हादिनी शक्ति हैं, शेषावतार लक्ष्मण हैं। श्रीराम भक्ति योगपरक शाखाओं में राम और सीता में नाद-बिन्दु का सम्बन्ध बताया गया है। सीता और परिकर का सम्बन्ध परिकर जीवात्मा के रूप में सीता जी अंश हैं जो ब्रह्म की पराशक्ति हैं। 'शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में 'र वै प्राण:' के अनुसार यजुर्वेद में 'रम' 'रम' शब्द को प्राणों का द्योतक माना है। रम का स्त्रोत होने से ब्रह्म को "राम" की संज्ञा दी गयी।

रसिक सम्प्रदाय के संतों द्वारा लीला पुरुषोत्तम श्रीराम के परम सखा के और श्री माता जानकी की प्रमुख सखियों के नामों की कल्पना इस प्रकार से की है। जो सभी सुख और आनन्द के प्रतीक हैं। श्रीराम के सखा हैं—

(१) सुन्दर (२) शेखर (३) वीरसेन (४) मणिभद्र (५) तेजरूप (६) रसिकेश (७) कलाधर (८) चारा रूप (९) रसरास (१०) मनोहर (११) गुणाकर (१२) मानद (१३) पत्रीस (१४) बनपाल (१५) गदाधर (१६) रमणेश (१७) पद्माकर (१८) शीलनिधि आदि।

इसी प्रकार से सीता जी की सखियों की कल्पना की गयी है।

(१) त्रिवेणी प्रसाद सिंह—धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ।

(१) चारुशीला (२) हेमा (३) क्षेमा (४) वरारोहा (५) पद्मगंधा (६) सुभगा (७) चन्द्रकला (८) लक्ष्मणा।

श्रीराम की लीला-भूमि :—रामभक्तों के रसिक सम्प्रदाय ने भगवान् श्रीराम की लीलाभूमि की कल्पना साकेत और अयोध्या के नाम से किया है जिसमें साकेत को दिव्यलोक माना है, और अयोध्या को भोगस्थली के रूप में माना है। इसे अष्टचक्र तथा नवद्वारों से युक्त बनाया गया है जो देवताओं की पुरी स्वर्ग-रूप में कल्पित की गयी है। ये नाम भी वैदिक साहित्य से ही लिये गये हैं।

अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पुरयोध्या।
तस्यां हिरण्यः कोश स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ वाल्मीकि रामायण।

सीता :—यदि श्रीरामचन्द्रजी परम पुरुष हैं तो माँ सीता जी आद्याशक्ति हैं। जिनसे स्थिति और संहार होता है, इनके द्वारा ही जगत की उत्पत्ति, स्थिति संहारकारिणी सर्वदेहिनाम्। है

सा सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृति संज्ञिता॥१

अर्थ—'समस्त जीवधारियों की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करनेवाली आद्याशक्ति मूल प्रकृति संज्ञक श्रीसीता जी ही हैं।' श्री जनकनन्दिनी में पृथ्वी, पाताल, तीनों भुवन, सप्त द्वीपवती वसुन्धरा, तीनों लोक ये सब प्रतिष्ठित हैं। श्रीराम के ही समान श्रीसीता भी वैदिकमंत्र की आधारशिला पर आधारित हैं।

अर्वाची सुभगे भव सीते।
वन्दा महेस्वा।
या नः सुभगासस्सि यथा नः सुफलाससि।२

अर्थ :—'हे असुरों का नाश करने वाली श्रीसीते! हम सब आप के चरणों की वन्दना करते हैं। आप हमारा कल्याण करें।' इसी माँ सीता का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' में किया है।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी।
अगनित, लच्छि उमा, रमा, ब्रह्मानी॥
भृकुटिविलास जासु जग होई।
राम बाम दिसि सीता सोई॥

आगे तुलसीदास कहते हैं—मैं इस परम शक्तिस्वरूपा सीता को नहीं जानता।

लखा न मरम राम बिन काहू।
माया सब सिय माया माहू॥

जिस प्रकार दशरथजी राम के पिता हैं, उसी प्रकार योगिराज जनक (विदेह) सीता का जनक। उनको विदेह भी इसी कारण से कहा गया कि वे देहधारी नहीं हैं। स्वयं सीता पृथ्वी-पुत्री; रक्तघट से उत्पन्न हैं। यहाँ संकेत है कि प्रकृति और ब्रह्म से उत्पन्न अन्न जिसका रक्षण विष्णु के द्वारा होता है।

(१) डॉ० भगवती प्रसाद सिंह—रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय पृष्ठ-२९६—२९७।

(१) श्रीरामतापनीय—उत्तरार्द्ध। (२) ऋग्वेद ४।८।९।

श्रुति-सेतु पालक राम, तुम जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति, रुख पाय कृपानिधान की॥

अहिल्या :—गौतम की पत्नी अहिल्या और इन्द्र की कथा बड़ी रोचक है। कथा की पूर्ण जानकारी हेतु हमें संस्कृत वाङ्मय का आश्रय लेना पड़ेगा।

अहिल्या कस्मात् अहर्दिनं लीयते अस्याम।

अर्थात् :—अहिल्या वह है, जिसमें दिन लीन हो जाता है। अतः अहिल्या नाम 'रात्रि' का है। इसी प्रकार गौतम-चन्द्रमा का नाम है जो रात्रि का पति है। चन्द्रमा को निशापति भी कहते हैं। उनकी पत्नी अहिल्या है, अतः रात्रि का ही नाम अहिल्या प्रमाणित हुआ। सूर्य (इन्द्र) दिन का स्वामी है। सूर्य को दिनकर और जार भी कहा गया है। जार का अर्थ परपुरुष होता है। यही इस मूलकथा की कल्पना का आधार है।

प्रातः जब सूर्य का उदय होता है, तो परपुरुष सूर्य के संसर्ग से रात्रि (निशा) गौतम (चन्द्रमा) की पत्नी लज्जावश अपने मुख को छिपा कर अदृश्य हो जाना चाहती है। (चन्द्रमा) (गौतम) दिन में मलिन हो जाता है अर्थात् वह तेजहीन होकर तपने लगता है और जब सूर्य-अस्त हो जाता है, तब वह अपनी पत्नी से मिलता है। सूर्य (इन्द्र) को सहस्राक्ष भी कहा जाता है। इससे इन्द्र का सहस्र भग वाला होना प्रमाणित होता है, पर यह भी रूपक ही है। सूर्य की सहस्र किरणें ही सहस्र नेत्र हैं।

परशुराम :—परशुराम इन्द्र एवं रुद्र के परशु को तीक्ष्ण करने वाले अग्नि के प्रतीक हैं। परशुराम भृगुवंशी हैं, इसी से उनको भार्गव कहा जाता है।

हनुमान :—श्रीरामचन्द्र के प्रधान सहायक हनुमान हैं। हनु का अर्थ चिबुक अथवा दाढ़ी होता है। हनुमान = दाढ़ी वाला। ऋग्वेद में अग्नि तथा इन्द्र इन दोनों को भी शिप्री, महा हनु अर्थात् हनुमान कहा गया है। वैसे हनुमान लांगूल राम के दूत थे, परन्तु ये वेदोक्त अग्नि के रूप में हैं। हनुमान का रंग अग्नि के समान रंग का ही है। श्रीराम के साथ लांगूल या वानर हनुमान थे। लांगूल का अर्थ हल होता है। सीता जी पृथ्वी पुत्री हैं, जिनका पता हल से लगा था। दूसरे मत में सीता पृथ्वी से उत्पन्न अन्न हैं जो हल चलाकर पैदा किया जाता है। हनुमान जी के द्वारा लंका का जलाया जाना वेद में अग्नि के द्वारा दस्युपुरों को जलाये जाने का वर्णन है। हनुमान का वायु या मारुत पुत्र होना रुद्र के पुत्र एवं अंजनि अर्थात् अन्तरिक्ष के गर्भ से उत्पन्न होना रूपक है। अतः रामायण के हनुमान जी वैदिक तत्वों पर आधारित हैं।

श्रीराम का चौदह वर्ष का ही वनवास क्यों ?

वर्ष, समय अथवा देश का कोई भी विभाग हो सकता है। एक संवत्सर में सूर्य अट्ठाइस (२८) नक्षत्रों को पार करते हैं। इनमें चौदह (१४) नक्षत्र उत्तरायण के हैं। तथा चौदह (१४) नक्षत्र दक्षिणायन के हैं। श्रीराम विष्णु स्वरूप हैं जो संसार के पालक हैं। संसार अन्न से होता है—अन्नाद् भवति भूतानि (गीता)

अतः राम कृषि के देवता हैं। यव आदि अन्न चौदह (१४) नक्षत्रों तक खेत में रहते हैं, बाद में वे घर में आते हैं। ध्यान देने योग्य बात है कि समुद्र के पार अर्थात् वृष्टि के पश्चात् ही सीता (अन्न) को उत्पन्न करने का या कृषि करने का कार्य आरम्भ होता है।

रावण :—रावण ब्रह्मापुत्र एवं ब्रह्मा का उपासक भी है। अथर्ववेद में दस सिर वाले एक ब्राह्मण का वर्णन है। रावण का अर्थ 'रव' अर्थात् घोर गर्जन करने वाला अथवा निरोधक है। ऋग्वेद में इन्द्र के एक शत्रु को अनेक सिरों वाला कहा गया है अर्थात् वह देवता जो पुरोहित होते हुए भी असुरों से मिला हुआ हो। मानस के रावण इन्द्र या विष्णु का शत्रु है। वह राम से विरोध करते हुए भी पौरोहित कर्म करता था। रावण का सीता जी को हरण करना कृषि का हरण करना है।

रावण का पुत्र मेघनाथ इन्द्रजित :—ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर इन्द्र का 'वृत' से पराजित होने का वर्णन है। रावण शिव का उपासक था। राम परम वैष्णव थे। राम की रावण पर विजय शैव पर वैष्णव की विजय भी है।

राम सात्विकता और सूक्ष्मता के प्रतीक हैं, उधर रावण तामस और विस्तार का प्रतीक है। इस प्रकार से तामस पर सात्विकता की और विस्तार पर सूक्ष्म की विजय है।

श्रीराम के रूप की पुष्टि आनन्द रामायण के तृतीय सर्ग में हुई है। सीता के द्वारा अध्यात्म ज्ञान की जिज्ञासा करने पर श्रीराम ने किया है—हे सीते! सत् चित् आनन्द रूप सागर में इच्छा रूपी तरंग द्वारा परम पवित्र आत्मा स्वरूप बिन्दु का जन्म हुआ, जिसका नाम आत्मा पड़ा। बुद्धि उसकी जननी है। अन्तःकरण उसका पिता है। उस आत्मा के चारों भेद ही उसके चार भाई हैं। उन चारों भाइयों के नाम, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था हैं। इन चारों का निवास स्थान हृदयाकाश है। कभी-कभी मनोवेग के कारण वे बाहर भी आ जाते हैं। इसलिए माया के योग से पूर्व संस्कारजनित दुर्वृत्तियों का खण्डन करना पड़ता है। यदि बुद्धि दूषित हो गई हो तो पुनः संसार में भटकना पड़ता है। उस समय आत्मा स्थान पर मोह, आशा, काम, क्रोध आदि का सर्वथा निग्रह हो जाता है। केवल शुद्ध माया का आश्रय प्राप्त है। शोक नाश हो जाने पर विवेक का जन्म होता है। इसी के साथ भक्ति भी आती है। मन का निग्रह कर लेने पर प्राणी लिंग निग्रही कहलाता है। इसी क्रम से चलकर प्राणी अहंकार को भी वश में कर लेता है।

माया का स्वरूप ,—काम, क्रोध, अविवेक आदि से (अविद्या) माया का निर्माण होता है। इनका विनाश होने पर सात्विक अर्थात् विद्यामाया का उद्भव होता है। इस सात्विक माया के उत्पन्न होने पर प्राणी को आनन्द की अनुभूति होती है। इस माया का उत्कर्ष होने पर ही महाकाश का निर्माण होता है। इसी स्थान पर सत्-चित् आनन्द का निवास है। इसके सम्पर्क में आ जाने पर प्राणी को मोक्ष के लिए मुक्ति मिल जाती है। यही मोक्ष का स्थान है।

इस वचन को सुनकर सीता जी के नेत्र में आँसू आ गये। वे बोलीं—भगवन अब मैं आपके स्वरूप को पहचान गई, भगवान् विष्णु हरि सागर हैं। उनकी इच्छा हरि सागर की तरंगें हैं। आत्मांश हरि बिन्दु है। उसकी बुद्धि रूपा जननी कौशल्या है। अन्तःकरण हरि पिता दशरथ

हैं। आत्मा के चार भेद हैं; जिनमें श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न हैं। इनमें श्रेष्ठ तुरीयावस्था आप स्वयं हैं। विश्वामित्र के यज्ञ में आपकी यात्रा मनोवेग का दूर होना है। मन की दुर्वृत्तियों का नाश ताड़का वध है, मनोवेग का भंजन धनुष भंग और मेरा पाणिग्रहण माया का योग है। पूर्व संस्कार का नाश परशुराम के दर्प का नाश है। कुबुद्धि रूपी कैकेयी द्वारा प्रेरित आपका वनों में भ्रमण हरि मायारणय में भटकना है, दम्भ को रोक लेना विराध का वध है। आत्मा रूपी पर्णकुटी यह शरीर है। काम का निग्रह खरदूषण का वध है। आशा का विच्छेद सूपर्णखा को विरूप करना है। क्रोध का निग्रह ही दूषण का वध है, लोक का निग्रह त्रिशिरा वध तथा मोह निग्रह मारीच का वध है।

मेरा (सीता) आपके वाम भाग में रहना शुद्ध माया का आश्रय है। मेरा अग्नि प्रवेश तामसी माया वियोग और मेरा रावण द्वारा हरण होना हमारा आपका वियोग, महाक्लेश है। कबन्ध वध शोक भंग, सुग्रीव की मैत्री, विवेक का आश्रय, भक्ति के उद्रेक का लाभ हनुमान का मिलन, बालि का वध अज्ञान का वध, विभीषण की मित्रता और सेतुबन्धन अज्ञान से तरने का एकमात्र साधन हैं। इस प्रकार पूरी रामायण की कथा का प्रतीक रूप प्राप्त होता है।

वसिष्ठ :—इनका ऋग्वेद में अनेक स्थान पर वर्णन आया है। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। पुराण कथाओं में ये ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। इनके माध्यम से सृष्टि की रचना हुई है। इसीलिए वसिष्ठ कहीं नक्षत्र रूप है। वही गुरु और पुरोहित है। कहा जाता है ब्रह्माने ही वसिष्ठ को (ऊर्जा) को ध्यान में ही रख निर्माण किया। इस प्रकार वसिष्ठ का आध्यात्मिक भाव है मानव शरीर में 'ओज' नाम का तत्व, जिसका दूसरा नाम साहस है। पुराण ग्रन्थमें इसे ही ऊर्जा नाम से कहा गया है जिसकी पत्नी (सहचारिणी) है, यहाँ प्राण की ही अवस्थाको वसिष्ठ कहा गया है।
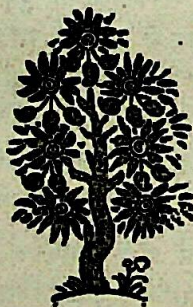
श्रीराम का वाहन—अन्य देवों के वाहन की भाँति राम का वाहनों भी एक गूढ़ रहस्य है। श्रीरामचरित मानस में श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ने वाहन-रथ का अनुरूप ही वर्णन किया है।

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा, देखि विभीषण भयउ अधीरा।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा, बंदि चरन कह सहित सनेहा॥

सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल बिबेक दम परहित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे॥

ईस भजनु सारथी सुजाना, बिरति चर्म संन्तोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा, बर बिग्यान कठिन कोदण्डा॥

अमल अचल मन त्रोन समाना, सम जम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा, एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥

अर्थ—जिसके रथ के पहिये शौर्य और धैर्य हैं। सत्य और शील उसकी मजबूत ध्वजा है। बल, विवेक दम्भ (इन्द्रियों का वश में होना) और परोपकार ये चार उसके घोड़े हैं। जो क्षमा, दया और समता रूपी डोरी से रथ में जुड़े हुए हैं।

ईश्वर भजन चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और संतोष खड़ग (तलवार) है। दान, फरसा है। बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है।

निर्मल और अचल मन तरकस के समान है, शम (मन का वश में होना) यम और नियम, ये बहुत से बांण हैं, ब्राह्मण और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है।

—•—

श्री कृष्ण

जिस प्रकार सन्त तुलसी ने अपने 'मानस' में श्रीराम को परमब्रह्म सगुण रूप में माना है, उसी प्रकार आचार्य वल्लभ ने परमब्रह्म की सृष्टि को श्रीकृष्ण की नित्यलीला माना है। उन्होंने कृष्ण को विष्णु के अवतार रूप में देखा है। वल्लभाचार्य का युग भक्ति का युग था। तत्कालीन सन्तों ने अधिकांशतः सगुण रूप को ही प्राथमिकता दी है। भक्तों ने अपने-अपने ईष्टदेव के साधन का आधार ग्रन्थ वेद को ही माना है। पुराण-वर्णित कथाओं में भी श्रीकृष्ण का विष्णु अवतार रूप में ही वर्णन है। भले ही कुछ भावुक कलाकार की कृति से भ्रम होता हो, किन्तु हम उनकी कल्पना के आधार पर विवेचना करते हैं, तो ज्ञात होता है कि उन सभी सन्तों ने अपने उपास्यदेव का चुनाव वैदिक देवताओं में से ही किया है। वेद में सूर्य को ही विष्णु शब्द से सम्बोधित किया गया है। इन्हीं से सृष्टि का पालन-पोषण और लय नित्य है।

श्रीकृष्ण की नित्यलीला :—सूर्य के प्रातः मध्यान, संध्या की तीन गति को ही त्रिपाद: कहा गया है, यही तीन गतियां भगवान् वामन के तीन डग हैं।

श्रीकृष्ण और राधा :—श्री वल्लभाचार्य ने भगवान श्रीकृष्ण के किशोर रूप को एक मात्र नित्य रसिक विहारी पुरुष माना है, और राधा उनकी पराप्रकृति शक्ति हैं, जिसको आचार्य ने विशिष्ट आल्हादिनी शक्ति स्वरूपा माना है। समस्त जगत ही रसिक युगल-किशोर का प्रतिबिम्ब मात्र है। श्रीराधाजी प्रकृति रूप में सर्वत्र व्याप्त हैं।

भौतिक जीवन में जीव रूप स्वरूपा सखियाँ ही श्री कृष्ण की सेवा करती हैं। पुष्टीमार्ग में श्रीकृष्ण को योगी लोग ऐश्वर्यपूर्ण ज्ञान, वैराग्य संयुक्त स्वरूप, अतिरिक्त गुणों से सम्पन्न योगीश्वर, योगीराज मानते हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय में :—वृन्दावन को श्री कृष्णस्वरूप और ऐश्वर्य शक्ति को वे अन्तर लीन का प्रेम और माधुर्य को प्रतीक रूप रसराज के रूप में माना है।

श्री राधा के स्वरूप की कल्पना भक्तिकालिक वैष्णव भक्तों द्वारा हुई है। इनमें बंगला के प्रसिद्ध भक्त चण्डीदास जी हैं। चण्डीदास ने राधा को प्रेम का पुनीत आदर्श माना है। कृष्ण के प्रति राधा का आशक्ति भाव एक शक्ति रूप से श्रीकृष्ण में ही स्थिर हुआ है, इस प्रकार धीरे-धीरे राधाकृष्ण के उपासकों की संख्या बढ़ती गयी। श्री चण्डीदास, श्री चैतन्य, श्री रूपगोस्वामी, श्री विद्यापति आदि द्वारा राधा की भक्तिलता बढ़ती गयी। श्री राधा के प्रमुख नामों में—श्री राधा, राजेश्वरी, रसवासिनी, कृष्णप्रिया, चन्द्रावली, चन्द्रकान्ता, कृष्णवामांश, सम्भूता आदि नाम हैं।

अनेक विद्वानों ने अनेक तर्कों से श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार सिद्ध किया है। इनमें सबसे अधिक पुष्ठमत ज्योतिषशास्त्र के मतानुसार उत्तर इस वैज्ञानिक युग के लिये अधिक मान्य होगा।

यहाँ आकाशीय नक्षत्रमण्ड की गति को ही लीला रूप में आधारित मूल श्रीराधा और श्रीकृष्ण की लीला की कल्पना है। राधा विशाखा नक्षत्र है जैसा कि कृष्णयजुर्वेद में विशाखा और अनुराधा नामक दो नक्षत्रों का वर्णन मिलता है। अनुराधा का तात्पर्य है राधा के पीछे आने वाला। विशाखा राधा का ही पर्याय वाची है, जिसकी पुष्टि अथर्ववेद में राधा विशाखा पद में विशाखा अर्थ स्पष्ट हो जाता है। आगे विद्वान अन्वेषक कहता है कि कार्तिक मास की पूर्णिमा को सूर्य या कृष्ण विशाखा (राधा) नक्षत्र में रुक जाता है। उस रोज सूर्य अन्य नक्षत्रों के साथ नहीं दिखायी देता, शेष नक्षत्र विलीन हो जाते हैं। यही है रासलीला की आधार कथा क्योंकि दोनों एक साथ विहार करते हैं। राधा को वृषभानु की पुत्री कहा गया है। राधा नक्षत्र (विशाखा) वृषराशि में लय रहता है। इस प्रकार राधा की माता का नाम कृत्तिका होता है। राधा की सखियों का नाम भी नक्षत्रों से ही सम्बन्ध रखता है। (१) अनुराधा (२) ललिता (३) भद्र (४) ज्येष्ठा (५) चित्रा (६) तारका (७) चन्द्रावली आदि।

श्रीकृष्ण के परिवार के नाम भी आकाशीय नक्षत्रों के हैं। इस संदर्भ में भारत प्रसिद्ध संस्कृत साहित्य सेवी विद्वान स्व० महामहिम पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदीजी ने अपने ग्रन्थ * में श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि सूर्य ही विष्णु हैं और श्रीकृष्ण को विष्णु रूप में माना है जो आकाशीय सूर्य ही है। इन्हीं को ही रासेश्वर कहा गया है। रासलीला में हमें जीव तथा परमात्मा का नैकट्य प्रकट होता है, अतः विश्व के आधार सूर्य मध्य विन्दु हैं और उसके चारों तरफ घूमने वाले नक्षत्र आदि जीव गोपियाँ हैं। सूर्य की किरणें ही गोपियाँ हैं, जो सूर्य में रहते हुए भी अलग दिखती हैं और अन्त में वे सूर्य में लीन हो जाती हैं, इसी को हम भगवल्लीला कहते हैं।

श्रीकृष्ण द्वारा गीता-उपदेश :—गीता उपदेश की दार्शनिकता का भाव प्रकट किया गया है कि—उपनिषद गाय है और कृष्ण दूध दुहने वाले ग्वाला तथा अर्जुन पीने वाला बछड़ा है। यह इस प्रकार से भी कहा जा सकता है कि गो—धर्म, श्रीकृष्ण रक्षक गोपाल हैं। अर्जुन नर है और श्रीकृष्ण नारायण हैं। श्रीकृष्ण के अध्यात्मिक रूप का वर्णन करते हुए विद्वान लेखक पं० जगन्नाथप्रसाद जी मिश्र 'पागल' ने 'श्रीराधा कृष्ण मिलन पद्ममाल' में भागवत ग्रन्थ में वर्णित पात्रों के नामों के अध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन इस प्रकार से किया है। (१) श्री वासुदेव जी पुरुष। (२) श्री देवकी जी प्रकृति। (३) मथुरा—मानव शरीर। (४) नौ नन्द—नौ छिद्र। (५) श्री नन्दराज जी आनन्द हैं। (६) श्री यशोदा जी—आशा हैं, (७) कन्या—शक्ति है। (८) गोपिकाएँ—इन्द्रियाँ हैं। (९) गोपगण—आत्मा, साधना है। (१०) ग्वाल-बाल—श्री कृष्ण के रोम-रोम हैं। (११) पूतना—हिंसा है। (१२) अघासुर—पाप है। (१३) तृणावर्त्त—लोभ है। (१४) व्योमासुर—क्रोध है। (१५) व्रज—मानव का अन्तःकरण है। (१६) श्री राधा जी सूरती हैं, इसके साथ किन्हीं विद्वानों ने राधा को पराशक्ति भी माना है। (१७) गोवर्धन—इन्द्रियों का समूह है। (१८) जीवात्मा—पुत्र। (१९) धनुकासुर—काम है। (२०) ईशभाव—भगवन्

---

* वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति।

(२१) पद्म—सुमन या पुष्प है। (२२) आत्मर्दन—मिलन। (२३) कालिया नाग—काल है। (२४) कालीदह—हृदय। (२५) उग्रसेन—धर्म। (२६) राजा कंस—अहंकार। (२७) अक्रूर जी—प्राण हैं। (२८) उद्धव जी—शब्द हैं। (२९) कुबरी—भक्ति त्रिगुण है। (३०) वृन्दावन—शुद्ध सतोगुण त्रिगुणात्मका (३१) लकुटी—रजोगुण हैं। (३२) काली कमली - तमोगुण है। (३३) वन—चौबीस तत्व हैं। (३४) गोकुल—मानव शरीर है। (३५) रासलीला—रास भैरव है। (३६) रथ—स्थूल शरीर है। (३७) अश्व (घोड़ा) विषय रूप है। (३८) पत्र—धैर्य रूप है। (३९) कदम्ब—कामना रूप है। (४०) कदम्बतल—भाव है। (४१) लताएं (लता) दया हैं। (४२) बाँसुरी—अनहदनाद (शब्द) है। (४३) सदगुरु संदिपनि है। (४४) संयम—धर्मराज (यमलोक) (४५) विरह—आत्म-दर्शन है। (४६) प्रेम—सूत्र है। (४७) सुमति, माला है। [४८] साधना—यमुना जी हैं। [४९] लयतीत लीला—ब्रह्मलीन [५०] श्रीकृष्ण—परम् ब्रह्म हैं। [५१] श्री राधा—बुद्धि रूपी नायिका और रासलीला है।

श्रीकृष्ण की रासलीला :—रास शब्द की उत्पत्ति एक प्रकार के छन्द, नृत्य, एक विशेष प्रकार की काव्य-रचना का नाम है जो मुख्यतः रूपक के अर्थ में सृष्टि के प्रारम्भ काल से ही नृत्य पान के प्रति मानव की स्वाभाविक मनोवृत्ति है। आनन्दातिरेक से नृत्य होने लगता है। साथ ही काव्य और नृत्य एक दूसरे की पूरक हैं। इस कला का प्राणी से गहरा सम्बन्ध है। मानव वे हर्ष, शोक आदि को व्यक्त करने के लिए तदनुकूल भाव, मुद्रा आदि को अपनाता है यह क्रिया मानव की ही नहीं पशु-पक्षियों में भी होती है। अतः रासलीला भावों को स्पष्ट करने वाली है।

चीरहरण :—पुराण कथा में चीरहरण, माखन चोरी आदि ऐसे कई स्थल हैं। जिनके सम्बन्ध में जन-साधारण में अनेक जिज्ञासाएं बनी रहती हैं। इन कथाओं के अध्यात्मिक रहस्यों का ज्ञान कुछ ही लोगों को हो पाता है इस सम्बन्ध में आर्य भट्ट के ग्रन्थ 'ज्योतिर्य' के टीकाकार का मत है कि—आकशिक, जल अर्थात् [व्योम] में 'निगम' ताराओं के प्रकाश का अपहरण ही गोपियों के चीरहरण लील का रूप है। अन्य विद्वानों का मत है कि—गोपिकाएं भक्ति का ही नाम है। अतः भक्ति का भगवान् के सम्मुख जाने के लिये किसी प्रकार का आवरण रहना सर्वथा अनुचित है जैसे—निदानकर्त्ता से रोगी को निसंकोच भाव से अपनी व्था का बयान करना लाभप्रद होता है। पर्दा सर्वदा कोई न कोई भेद रखता है। जिस प्रकार से बालक माता-पिता के समक्ष नग्न रहता है। उसी प्रकार भक्ति भी न भेद चाहती है न लज्जा। परदा तो वाह्य आवरण है। एक धोखा है। जब परम ब्रह्म कृष्ण से साक्षात्कार हो गया पर्दा कोइ अर्थ नहीं रखता। यह सम्पूर्ण सृष्टि उस जगत-पिता श्री कृष्ण की संतान है तो पिता से संतान को कोई भेद नहीं करना चाहिए चीरहण या गोपिकाओं का नग्न रहना मात्र एक रूपक है।

—❀—

कामदेव-वाहन मन

पुराण-कथाओं में कामदेव की उत्पत्ति ब्रह्मा के मानस पुत्र दक्ष प्रजापतियों में से सुन्दर रूपमती सन्ध्या नामक देवी के मन से बताया गया है।

जन्मकाल से कामदेव के हाथों में पुष्प के धनुषबाण हैं, इसलिये कामदेव को कुसुमाकर, कुसुमायुध नाम से पुकारा जाता है। हाथों में धारण किये हुए पुष्प के पांच बाणों द्वारा ही सारे संसार के जीव मात्र को मुग्ध कर कामदेव उन्हें बाणों से बेध देते हैं। कामदेव की आयु सदा किशोर है। वे अंग पर केशर युक्त चन्दन का लेपन और गले में चंपक के पुष्पों का हार धारण किये हुए हैं। कामदेव के सबसे प्रिय एवं सहायक सखा बसन्त ने मन्द-मन्द समीर आम्रमञ्जरी की भीनी-महक और अत्यन्त ढेर-सा मकरन्द देकर कामदेव के बाणों को और भी पैना कर दिया है।

भारतीय साहित्य में कामदेव के पाँच बाणों की कल्पना है—अरविन्द, अशोक, आम्र, नीलोत्पल और नवमल्लिका ये ही कामदेव के बाणों के पाँच फूल हैं। इन पाँचों में आम्र की विशेषता है। बसन्त ऋतु में आम्र अपने नये बौर आने पर दक्षिण-पवन मन्दगति से बहते हुए भीनी-भीनी महक का स्पर्श हर प्राणी को करता है। बसन्त में कोयल की कूक और आम्र-बौर की महक राह चलने वाले पथिक के अंग-अंग में मादकता भर देती है। इससे पथिक को मदन के तीक्ष्ण शरों की वेदना का अनुभव होने लगता है और प्राणों में एक अव्यक्त व्याकुलता समा जाती है। इस प्रकार आम्रमञ्जरी की मधुर एवं मादकता युक्त वायु भी कामदेव का वाहन होता है।

कामदेव का एक नाम पञ्चशायक भी है। अपने शायकों द्वारा कामदेव मानव मात्र को पीड़ित करता है जिससे पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषयोपभोग से उद्दीपित सुख की इच्छा पूरी होती है अतः यह नाम पड़ा। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के शरीर में इन पाँचों विषयों के सार एवं उनके उपभोग से सांसारिक सुख की पराकाष्ठा का अनुभव पाते हैं। इसलिये स्त्री-पुरुष के 'द्वन्द्व' (जोड़े) का 'काम' यह विशेष नाम है। कामदेव ने ही सुरपति इन्द्र को गौतम-पत्नी अहिल्या का जार बना दिया। चन्द्रमा को अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा से व्यभिचार करा दिया। स्वयं जगत्पति सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा को सरस्वती के पीछे दौड़ा दिया। नारद को अपने बाणों से बेध कर पथभ्रष्ट कर दिया।

इसीसे कामदेव को मदन अर्थात् जो मद से भर दे। मन्मथ—जो मन को मथ दे। यह चेतना को भ्रम में डाल देता है। मार—जिससे मृत्यु हो जाय।

पुराणों में उनके दिव्यस्वरूपों के वर्णन प्राप्त होते हैं। उनके रूप—सौन्दर्य एवं विभिन्न आभूषणों आदि की चर्चा की गयी है। कामदेव की चार भुजाएँ हैं, प्रत्येक भुजा में क्रमशः शंख, पद्म (चम्पक का फूल) फूलके धनुष और बाण हैं। उनके बाणों की संख्या पाँच है—रति प्रीति, शक्ति, उज्ज्वला, आदि।

इनके नेत्र मदभरे एवं चढ़े हुए रहते हैं। इनकी लालध्वजा में कहीं मकर का वर्णन मिलता है तो कहीं मीन का। कामदेव को मैंने ब्रह्मा का संकल्पपुत्र माना है। इससे मानसिक क्षेत्र में 'काम' संकल्प से ही व्यक्त होता है, संकल्प पुत्र हैं। काम और काम के छोटे भाई क्रोध हैं। काम यदि पिता संकल्प के कार्य में असफल हो तो वहाँ क्रोध उपस्थित होता है। कामदेव योगियों के आराध्य देव हैं। ये प्रसन्न होकर मन को निष्काम बना देते हैं। कवि, भावुक कलाकार तथा विषयी इनकी उपासना करते हैं।

यहाँ पाठक भ्रमित न हों क्योंकि व्यवहारिक दृष्टि से ये सब पौराणिक कथाएँ ये उपदेश प्रद हैं, जिनके भावार्थ ये हैं कि—इस नश्वर संसार में प्राणी को संभल कर चलना चाहिए। दर्प न करना और काम के वेग से सावधान रहना ही ये आध्यात्मिक तथा रूपक भी हैं। कन्दर्प का अर्थ भी काम से है, इस संसार में सभी के दर्प का खण्डन होता है। 'मदन' भी जीव को मद से मत्त या मस्त कर देता है जैसे—अच्छे पदार्थों के भोजन से बल और बल से बलमद, धन-सम्पत्ति से धनमद तथा जिससे सब सार या वीर्य, पुरुषार्थ इससे वीर्यमद, काममद, ऐश्वर्य-मद, इस प्रकार तामस, हर्ष के सभी साधन हैं। मद का अर्थ—घमण्ड, हर्ष, उद्धता तथा वीर्य भी है। इस प्रकार अन्तर भाव की वृद्धि है कि मेरे समान दूसरा कौन है।

महाकवि कालिदास ने अपने 'कुमारसम्भव' में अभिमानी कामदेव द्वारा भगवान शंकर पर पुष्पबाणों का प्रहार करने का वर्णन किया है। साथ में मुख्य सहायक बसन्त सुन्दर नायिका की कटीली भौंह के समान नयी कोयलों के पंख लगा कर, आम्रमंजरियों के बाण तैयार करते हुए कहा है कि बसन्त की सुगन्ध युक्त पुष्पों से टकराती वायु के साथ समस्त जड़-चेतन में प्रवेश कर उनको संभोग की इच्छा से कामान्ध बना रहा था।

सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्तिं नवचूतबाणे।
निवेशयामास मधुर्द्विरेफान्ना माक्षराणीव मनोभवस्य॥
वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।
प्रायेण सामाग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः॥

अनेक विद्वान और कवि तो बसन्त को ही कामदेव का अवतार मानते हैं। नूतन कोपलों से सुशोभित छोटी-छोटी मुक्तलताओं-सी मनोहर पुष्पों की पंक्तियों को मतवाली-भ्रमर पंक्तियाँ चूमते हुए देखकर हर प्राणी का मन डाँवाडोल हो जाता है। बसन्त में मदमाती भ्रमरों की पंक्तियाँ कामदेव के धनुष की प्रत्यंचा समान है और अतुल राशि से समृद्ध ऋतुव स्वयं धनुष बन गया है।

मदमति रसालो के झूमते बौर ही मानों कामदेव के अमोघ बाण हैं। बसन्तऋतु में निष्कलंक दिखायी पड़ने वाला धवल चन्द्रमा स्वयं कामदेव का छत्र बना है।

आम्री मंजुलमंजरी वरशरः सत्किंशुकं यद्धनुर्ज्या
यस्यालिकुलं कलंकरहितं छत्रं सितांशुः सितम्।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित संस्कृत सूक्ति-सागर १९-२०
कालिदास ग्रन्थावली कुमार संभवम् तृतीयः सर्गः २७।२८।

मत्तेभो मलयानिलः भौ परभृता यद्वन्दिनी लोकजितः
वसोऽयं वो वितरीतरी तुवितनुभंद्र बसन्ताग्वित ॥

आम के बौर ही जिसके बाण हैं, टेसू ही धनुष हैं, भौरों की पाँत ही डोरी है, मलयाचल से आया हुआ पवन ही मतवाला हाथी है, कोयल ही गायक है और शरीर न रहते हुए भी जिसने संसार को जीत लिया है वह बसन्त के सहित कामदेव सदा आपका कल्याण करे।

पञ्चतत्व—अग्नि-जल, वायु, मिट्टी और प्रकृति से बने हुए इस मानव शरीर में जैसे अन्न-जल के द्वारा वीर्य, शक्ति के पैदा होने की शक्ति है, उसी प्रकार वायु में तीव्र वेग से गन्ध को प्रसारित करने की शक्ति है जो सब को चलायमान करता है। मत्स्य पुराण में दिति के पूछने पर वशिष्ठ आदि ऋषियों ने मदन द्वादशी व्रत के अनुसार सर्वकामों का सिद्धिदाता भगवान् विष्णु को ही बताया है। यह चैत्र मास से शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि को किया जाता है। इस व्रत में कामदेव की मूर्तिपूजा का उल्लेख किया गया है। कामदेव के एक ओर एक कामातुर गर्दभ तथा दूसरी ओर जल की वापी नन्दन वन के दृश्य होने चाहिए।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी मानस में कामदेव का वर्णन करते हुए कहा है कि—

मदन अन्ध व्याकुल सब लोका।
निसिदिन नारी अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला।
प्रेत पिसाच भूत बेताला॥
इन्ह कै दसा न कहेउं बखानी।
सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी।
तेपि कामबस भए बियोगी॥

भये कामबस जोगीस तापस पाँवँरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दण्ड भरि ब्रह्माण्ड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥

कामदेव ने किसी को भी नहीं छोड़ा। देवता-दैत्य, मनुष्य किन्नर, नाग, प्रेत, बैताल ये सब तो सदा काम के दास हैं। दो घड़ी तक ब्रह्माण्ड भर में कामदेव का कौतुक हुआ, योगेश्वर और तपस्वी तक जब काम के वश हो गये तो पामर मनुष्यों की कौन कहे।

संस्कृत सूक्तिसागर में उपमा देते हुए लिखा है कि कामदेव के रथ में सूक (तोते) जुते हुए हैं—जिनपर मीन (मछली) के चिह्न से अङ्कित लाल रंग की ध्वजा लगा कर, कामदेव विचरण करता है। यहाँ तोता, अतिशय मोही तथा विनोदी-प्रेमी होने से काम का प्रतीक है। आगे कहीं-कहीं कामिनी के दोनों कुचों को ही कामदेव का वाहन कहा गया है, किन्तु कुच को वाहन

कामदेव के भस्म होने के पहले माना जा सकता है, बाद में नहीं। भस्म होने के बाद अनङ्ग होने पर कामदेव का वाहन मन हो जाता है। इसीसे कहा गया है कि मन जीता जग जीता। मन बड़ा चञ्चल है। मन पर संस्कार का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। जैसा प्रभाव मन पर पड़ता है, उसी के तदनुरूप वह चलता है।

योगवासिष्ठ के अनुसार मन सर्वशक्तिमान और अनन्त आत्मा-तत्व (ब्रह्म) की संकल्प शक्ति का ही नाम है। मन ही संसार को उत्पन्न करने और चलाने वाला है। मन के संतुष्ट हो जाने पर जीवन में परम् शान्ति प्राप्त होती है। 'मन जीते जग जीता' मन की चञ्चलता को जीत लेने से प्राणी ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। मन संसार रूपी माया-चक्र की नाभि है। इस नाभि को बल और बुद्धि द्वारा घूमने से रोक लेने पर संसार-चक्र की गति भी रुक जाती है। मन की चञ्चल गति का विरोध करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। मन का दूसरा रूप वासना है। वासना, इच्छा और मन का पर्यायवाची शब्द है। मन को ज्ञान रूपी अंकुश से दमन करने से ही काम, क्रोध मोह, लोभ पर अधिकार हो सकता है। इसी प्रकार काम (कामदेव) क्रोध, मोह और लोभ का वाहन मन होता है। मन पर सवार होकर जीव सर्वत्र भ्रमण करता है। कामदेव का प्रभाव मनुष्य पर ही नहीं कीट-पतंग आदि पर भी पड़ता है, इसका रोचक वर्णन मत्स्य-पुराण में इस प्रकार है—

एक समय राजा ब्रह्मयत-अपने उपवन में पत्नी सहित एक कीट-दम्पति (चींटे-चींटी) को देखा। कामुक कीट, जिसका प्रत्येक अङ्ग काम के बाण से जल रहा था। वह चींटी को चारों ओर से घेर कर गद्-गद स्वर में कह रहा था। हे कल्याणि, इस लोक में कहीं भी तुम्हारे सामान कोई सुन्दरी नहीं है। दुर्बल कटि प्रदेश, केले के समान जंघों वाली, ऊँचे और कठोर स्तनों के भार से नम्र होकर चलने वाली तुम्हारे समान दूसरी सुन्दरी कौन है। तुम मेरे भोजन करने के बाद भोजन करती हो। मेरे स्नान करने के बाद स्नान करती हो। मेरी इतनी सेवा करने पर भी सर्वदा नम्र बनी रहती हो और मेरे क्रुद्ध होने पर अपनी टेक से विचलित हो जाती हो। बताओ ! तुम इस समय अपने मुँह पर क्रोध का भाव क्यों धारण की हो। इन चाटुकारी-पूर्ण बातों को सुन कर चींटी ने कहा, तुम दुष्ट,कामुक झूठ बोल रहे हो। कल ही तो तुमने मुझको लड्डू का चूर न देकर एक दूसरी चींटी को दिया था। इसपर चींटे ने कहा, कि तुम्हारे समान उसकी भी आकृति थी। भ्रमवश मैंने उसको चूर दे दिया। हे सुन्दरी ! अनजाने में हुए इस अपराध को तुम्हें क्षमा करना चाहिए। मैं सच-सच कहता हूँ कि फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगा। तुम्हारे पैरों पड़ रहा हूँ। इस प्रकार मन को अपना वाहन बना कर जीवमात्र पर कामदेव स्वयं अनंग होते हुए शक्ति रूपी अबला के माध्यम से अपना प्रभाव जमा कर संचालन कर रहा है। द्वापर में कृष्णावतार को कामदेव का अवतार बताया गया है। इसी प्रकार से प्रद्युम्न को कामदेव का पुत्र बताया गया है।

शिव के तीसरे नेत्र खुलने पर कामदेव के भस्म होने के उपाख्यान के मूल में बड़ी वैज्ञानिकता छिपी हुई है। यहाँ भाव यह है कि समाधिस्थ सच्चायोगी वही है जिसने समस्त कामनाओं पर विजय प्राप्त कर ली हो। वह एकमात्र शिव ही महेश्वर हैं, वही सच्चा योगीश्वर है। जिसने अपने भ्रू मध्यस्थ (भाल नेत्र) दृष्टि-निपात से कामदेव को भस्मीभूत कर दिया था। जिसका स्पष्ट भाव यह है कि योगसिद्धि, सन्त वे ही हैं, जिन्होंने अपने योगबल से षट्-चक्र भेद

लिया हो और समाधि सिद्ध हो। यहाँ तीसरा नेत्र ज्ञान नेत्र है और अज्ञान चक्र अन्दर ढंका हुआ जिसके खुलने पर ज्ञान नेत्र खुलता है। इसका स्थान ललाट है जो दोनों भौंहों के बीच में स्थित है। जिसको भेदने के लिए मौन जप पूर्वक अन्तर्दृष्टि को स्थिर रखना पड़ता है। इस प्रकार के साधकों को दिव्यशक्ति के द्वारा दिव्यदर्शन होते हैं।

सृष्टि-रचना के हेतु :—कामदेव ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। कामदेव मन के द्वारा ही संकल्प से व्यक्त होता है। इसलिये भारतीय मनीषियों ने इसे संकल्प-पुत्र भी कहा है। योगी लोग बिना कामदेव को संतुष्ट किये निष्कामी नहीं बन सकते। कामदेव के बाण नीलकमल, आम्रमञ्जरी, चम्पक आदि फूल हैं।

पौराणिक कथानकों के आधार पर इनके रथ में सूक (तोते) जूते हैं। रथ पर मीन की मुहर वाली रक्त ध्वजा है।

सूकपक्षी बड़ा ही प्रणयी स्वभाव से अत्यधिक प्रमोद प्रिय होता है। इस पक्षी में मोह और रती प्रेम की अधिकता होती है। इसीसे यह काम का प्रतीक होने पर कामदेव का वाहन हुआ।

भैरव-वाहन श्वान

भैरव तान्त्रिकों के देवता हैं। कैलाशपति भगवान् शंकर के कोटपाल हैं, कोटपाल दुर्गपति होता है। नगर के दूत उसके अधीन होते हैं, जिसके द्वारा वह राज्य की रक्षा करता है। भगवान् शंकर में ज्ञान, कल्याण तथा संहार इन तीनों बिन्दुओं की प्रधानता मानी जाती है। जिसमें संहार बिन्दु से भैरव-स्वरूपों की सृष्टि हुई है।

"भैरवतन्त्र" में भैरव के नव (९) नामों का वर्णन है। उनके नाम निम्न लिखित हैं— (१) शक्ति, (२) भैरव (३) महाभैरव (४) योगिनी भैरव (५) कालग्नि भैरव (६) काल भैरव (७) कंकाल भैरव (८) बटुक भैरव (९) सिद्ध भैरव। भैरव शंकर की संहारिणी शक्ति है। जिसे योगियों ने मणिपूरक चक्र के ऊपर दूसरे चक्र पर अलग-अलग चक्राकार स्थिति में विद्या के रूप में माना है। वे इसी को भैरवीचक्र मानते हैं। योगी लोग चक्र के मध्य भैरव को यमरूप में देखते हैं। वे अहर्निश मधुरूप भैरवी. शक्ति का पान करते रहते हैं। अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण उपासनाओं और तन्त्रों की संरक्षिका के रूप में भैरव हैं।

भैरव यम के अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं। यम का प्रतिनिधि तन्त्रग्रन्थों के अलावा वैदिक साहित्य में भी कुक्कुर को ही माना गया है। महाभारत में हिमालय आरोहण के समय युधिष्ठिर तथा कुत्ते का आख्यान मनन करने योग्य है। महाप्रस्थान के समय चारों भाइयों एवं द्रौपदी के गिर जाने के बाद भगवान इन्द्र ने अपने रथ के शब्द से आकाश और पृथ्वी को परिपूर्ण करते हुए युधिष्ठिर के पास आकर उनसे रथ पर चढ़ने को कहा। उस समय उनके साथ एक कुत्ता भी था जिसे वे अपने साथ ही स्वर्ग ले चलने का आग्रह करने लगे। इन्द्र के समझाने पर भी वे कुत्ते का साथ छोड़ने को तैयार नहीं हुए। अन्त में भगवान् धर्म के कुत्ते का स्वरूप त्याग कर युधिष्ठिर से कहने लगे; तुममें पिता के समान ही चरित्र, बुद्धि और सब प्राणियों पर दया है। इससे मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ।

श्वान के रूप में यमराज स्वयं भैरव के साथ में रहकर उनकी आज्ञाओं का पालन तथा कालचक्र का सम्पादन करते हैं। अतः समस्त गृहस्थ एवं शंकर-भक्त, विपत्तियों से बचने के लिए तथा सुख-शान्ति के निमित्त श्वानबलि देते हैं। तन्त्र का भी यही उद्देश्य है। इसी प्रकार प्रत्येक हिन्दू वैश्वदेव तथा अग्नि होम के बाद पञ्चबलि देता है, जिसमें श्वान का द्वितीय स्थान है।

द्वौ श्वानौश्याम सबलौ वैवस्वतः कुलोद्भवौ,
ताभ्यांमन्नते प्रदास्यामि स्यातां में ताव हिंसको।

बलिदानसमयें रिपुणां सर्वसैन्यकम्॥ १४५॥
निवेदयेद्बलीलं तेन बटुकाय, शिष्टधीः
विदर्भयेच्छत्रुनाम्ना बलिमन्त्रं तथा सुधिः॥ १४६॥
शत्रुपक्षस्य रुधिरं पिशितं च दिनेदिने॥
भक्षयेच्छ्वःगणैः सार्द्धं सामेयसमन्वितम्॥ १॥
बलिमन्त्रोयमा ख्यातः सर्वेषां विजय प्रद्धः

अनेन बलिना हृष्टो बटुकः परसैन्यकम्
श्वगणेभ्यो विभाजते सामिषं क्षुध मानसः ॥ १४८ ॥

(मेरुतन्त्र पृ० ७५४)

बटुक को बलिदान देते समय साथ-साथ शत्रुसेना को भी निवेदित कर दे, ऐसा करने से बटुक भैरव अपने श्वानगण के साथ शत्रु पक्ष का रुधिर और मांस का भक्षण करते हैं। भगवान् दत्तत्रेय ने भी निद्रा के लिये श्वान को अपना गुरु माना है।

कुत्ते का स्वभाव :—कुत्ता एक स्वामी भक्त पशु है। कुत्ता स्वभावतः रात्रि में अधिकतर जागरण करता है। वह अपने स्वामी एवं अन्य पास-पोड़ोस के घरों तथा मुहल्ले की चौकीदारी सजग होकर करता है। रात्रिकाल में कुत्ते इतने चौकन्ने रहते हैं कि दूर से ही किसी आदमी या पशु के आने की आहट सुनकर भौंकने लगते हैं। उनकी घ्राणशक्ति बहुत तीव्र होती है, जिसके द्वारा वे रात्रि में विचरण करने वालों को सूंघ कर पहचान लेते हैं। कुत्ते मनुष्य के हावभाव को भी अपने मस्तिष्क में सजोये रहते हैं। जिससे वे मनुष्य के इशारों पर कार्य करते हैं। कुत्ता भले-बुरे, मित्र-शत्रु हर चीज को सूंघ कर जान लेता है। जिस प्रकार दास या गुलाम का कोई अपना मत तथा सिद्धान्त नहीं होता उसका धर्म उसी प्रकार स्वामी की आज्ञा पालन करना मात्र होता है। कुत्ते में भी वही गुण हैं, वह स्वतन्त्र नहीं है। वह न अपनी जाति का मित्र है, न तो स्वाभिमानी ही है। उसका कोई अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वह टुकड़े के लिये स्वामी के पैरों पर सिर रखता है। इस प्रकार कुत्ता स्वाभाविक दास्य प्रवृत्ति का होता है।

कुत्ते में अनुसंधान की शक्ति अधिक होती है। कुत्तों द्वारा न जाने कितने बड़े-बड़े जासूसों के कार्य हुए हैं। आज कल अधिकतर लोगों में कुछ खास जातियों के कुत्तों को अपनी रक्षा की दृष्टि से पालने का चक्कर लग गया है। इसके लिये वे पहले कुत्तों को सिखाते हैं। स्वामी से झगड़ा हो जाने पर ये कुत्ते तुरन्त दुश्मन पर चढ़ने के लिए तत्पर रहते हैं। कुत्ता एक प्रकार से मनुष्य का मित्र के समान जीवन का साथी होता है। स्वामी यदि कभी बिगड़ भी जाता है, तो कुत्ता अपना मस्तक नीचा कर लेता है। वह दो-चार थप्पड़ (मार) खा लेता है। अधिकांशतः कुत्ते कभी छोटे बालकों पर क्रोध नहीं करते। स्वामी के बालकों के लिए तो न जाने कितने कुत्तों द्वारा जान तक दे देने की कथा इतिहास में प्रसिद्ध है।

पुलिस एवं गुप्तचर विभाग हत्याकाण्ड एवं अन्य गुरुतर अपराधों का पता लगाने के लिए विशेष प्रशिक्षित कुत्ते रखते हैं। इस काम में उन्हें पर्याप्त सफलता मिलती रहती है।

कई वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में पुलिस-विभाग में हत्या- काण्ड एवं अन्य गुरुतर अपराधों का पता लगाने के लिए विशेष प्रशिक्षित कुत्ते मंगवाये थे, जिनसे पुलिस हत्याकाण्ड आदि गम्भीर घटनाओं की जाँच में अपराधियों का पता लगाने में पूर्णरूप से सफलता मिली है। इसी तरह प्रान्त में ही नहीं, सम्पूर्ण देश में कुत्तों से यहाँ की पुलिस काफी मदद लेती रहती है। यहाँ से विदेशों में कहीं अधिक इसका ध्यान रखा जाता है।

कुत्ते के स्वमीभक्ति की एक घटना लेखक को मालूम है। आगरा जिले के बक्सर नामक स्टेशन के पास एक दूकानदार के यहाँ एक कुत्ता था। जिसका नियम था कि रात्रि में घर छोड़

दिये जाने के बाद वह अपने मुँह में लालटेन लेकर स्टेशन पहुँचाता और रात में लौटते समय मालिक का मार्ग प्रदर्शन करता था। यह उसका नित्य का कार्य था। प्रातःकाल नित्य-क्रिया जाने के पहले दूकानदार कुत्ते को एक लोटा पानी भर कर दे देता जिसे वह अपने मुंह से पकड़ कर घर सेएक डेढ़ मील दूर पहुँचाता था, इससे भी कुत्ते की स्वामी-भक्ति, कार्यकुशलता प्रकट होती है।

वैज्ञानिकों ने ग्रहों की आकाशीय स्थिति की जानकारी के लिए "लायका" नामक कुत्ते का उपयोग रूस द्वारा छोड़े गये द्वितीय उपग्रह में किया था। इससे सिद्ध होता है कि प्रशिक्षित किये जाने पर कुत्ते विज्ञान की उन्नति में भी सहायक हो सकते हैं।

ताजी एवं अन्य शिकारी कुत्तों द्वारा आखेट में भी सहायता ली जाती है। शिकारी कुत्तों द्वारा जंगलों में से शूकर और खरगोश को मांद में से पकड़वाने का वर्णन महाकवि केशव ने भी किया है।

> तीतर, कपोत, पिक केकी, कोक, परावत,
> कुररी, कुलंग, कलहंस गहि लाए हैं।
> केशव शरभ स्याह गोस सिंह रोष नत,
> कुकरन पास यश शूकर नहाये हैं॥ — कवि प्रिया

यम के दो कुत्ते :—

> श्यामश्च श्यामा शबलश्च प्रेषितौ,
> यमस्य यौ पथि रक्षी श्वनौ।
> अर्वाङ्गे हिमा विदीध्योमातिष्ठः पराङ्मना अ० ८-११-९॥

यम के दो कुत्ते हैं एक श्याम, दूसरा श्वेत है। ये दोनों श्वान यम के दूत भी कहे गये हैं। पण्डित शिवशंकर काव्यतीर्थ महोदय ने अपने वेद-तत्व प्रकाशित पुस्तक में इन दोनों श्वानों में एक को दिन और दूसरे को रात्रि कहा है, जो श्वान की भाँति प्राणियों की रक्षा में समर्थ हैं। वैदिक साहित्य में सूर्य दिन का अधिपति और अहोरात्रि समूह का अखण्ड काल कहा गया है।

> अतिद्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलो साधुना पथा।
> अथा पितृन् सुविदत्रां उपेहिय मेन ये सधमाद भवन्ति (ऋ० १०॥)

जैसे राजा के दूतों का काम सज्जन पुरुषों की रक्षा और दुर्जनों को दण्ड देना होता है उसी प्रकार इन कुत्तों का कार्य है। कहीं-कहीं श्वान सारमेय शब्द का अर्थ कुत्ता माना गया है। उषा किरण को भी कुत्ता कहा गया है। जो प्राणी अपने जीवन के दिन-रात को संयम पूर्वक सुकर्म में व्यतीत करता है, उसके जीवन की रक्षा यही दिन-रात्रि रूपी कुत्तों से होती है। जो अपनी जीवनचर्या ही शुद्ध सन्मार्ग पर नहीं रखता वह अवश्य यातनाग्रस्त और नरक-गामी होता है। वह अपने दिन-रात किये हुए का फल भोगता है। यहाँ असंयमी दिन-रात रूपी कुत्ता भैरव का वाहन है और भैरव संहारकर्त्ता शंकर का दूत है जो भैरवी यातना देता है। वैष्णव सम्प्रदाय में कुत्ता यम का प्रतीक है, उसे हम काल भैरव कहते हैं।

—०—

महाशक्ति की उपासना

पौराणिक कथाओं के अनुसार ब्रह्म की पराशक्ति की आद्याशक्ति, जगदम्बा ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कार्य करती है। महामाया के कार्यानुसार अनेक नाम कल्पित हैं, जिनके विविध रूपों का वर्णन इस प्रकार है।

महाकाली :—महाकाली परात्पर नाम से विख्यात विश्वातीत, संहारकर्ता, महाकाल भगवान शंकर की शक्ति का नाम अनेक नामों से देवी भागवत एवं तन्त्र-ग्रन्थों में विभिन्न रूपों में ध्यान के लिए वर्णित है। किसी के हाथ में खप्पड़, नरमुण्ड, किसी के हाथमें कैंची, त्रिशूल आदि हैं।

महाकाली, श्यामा, काली, ताराकाली-भद्रकाली, दक्षिण काली आदि इनके अलग-अलग रूप हैं। धूम-वर्ण, लालजिह्वा, रुद्ररूपा अष्टभुजा, वैष्णवी, वाराही, दुर्गा आदि का रहस्य यह है कि ये काली नहीं हैं। निर्मल उज्ज्वल वर्ण, किन्तु दूर से देखने में नीले अकाश और जल की तरह दिखाई पड़ती है। साधकों ने इनके रूपों का वर्णन इस प्रकार किया है—

धूम्रवर्णः—यज्ञ करते समय जो अग्नि से लाल-लाल लौ निकलती है, वही उनकी लाल जिह्वा और उसमें से जो धूम्र निकलता है वही उनका वर्ण है। अन्त में चिता की राख (भस्म) ही काली का उज्ज्वल रंग है। घोद्रंष्ट्रां हसन्मुखीम।

शवारूढां महाभीमां घोरद्रंष्ट्रा हसन्मुखीम।
चतुर्भुजां खड्गमुण्ड वराभयंकरां शिवाम॥
मुण्डमालाधरांदेवीं लालजिह्वांदिगम्बरां।
एव सञ्चिन्तयेत् कलीं श्मशानालयवासिनीम॥

महाकालरात्रि अगम शास्त्र में प्रथम आद्या आदि नामों से पूज्य हुई हैं। रात्रि प्रलयकाल का स्वरूप है; उसमें भी अर्द्धरात्रि का समय महाकाली का समय माना गया है, इसके बाद उत्तरोत्तर तम का ह्रास माना गया है।

इतने समय को तम के तारतम्य के कारण आदि ऋषियों ने उसको चौरासी भागों में विभक्त किया है। प्रत्येक का स्वरूप अलग-अलग है। शक्ति के उन्हीं स्वरूपों का बोध करने के लिए संकेत विधान के आधार पर ही ग्रन्थकारों ने इनकी प्रतिमाओं का निर्माण किया है। सभी शक्तियाँ अचिन्त्या हैं और निर्गुण हैं। प्रत्यक्ष से उनके ध्यान के लिए स्वरूप ज्ञान तथा उपासना हेतु उनकी कल्पित प्रतिमाएँ बनायी गयी हैं। आज उनकी रचना वैचित्र्य पर संदेह का कारण प्राचीन आर्य ग्रन्थों का सम्पर्क अध्ययन न होना है।

महाकाली की प्रतिमा संहार की विकराल विभिषिका श्मशान, शव, शिवा, जलती हुई चिता, नरमुण्ड रुधिरमय भैरव, नृत्य करती हुई प्रलय कालीन मेघमाला के समान आतंककारी शव कर निर्मित मेखला से युक्त उनका कटिप्रदेश आवद्ध है। इस दिगम्बरी रूप को देखकर

किसी को भय नहीं लगता। उसका निवास श्मशान है, जिसके चरण के नीचे महाकाल दबा पड़ा है, चतुर्विध शव बिखरे हैं। अर्थात् महाकाल शव रूप से महाशक्ति के चरण-तल में निपतित रहता है। महाकाली के चरण तले शव रूप में :शिव क्यों? इस के उत्तर के लिए प्रकृति-पुरुष वाद का आश्रय ग्रहण करना होगा। शिव निष्क्रिय पुरुष हैं। इस लिए उसके शव आकार पर शक्तिस्वरूपा काली की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। मेघमाला के भीषण गर्जन, विद्युतत्पुञ्ज की सचकित क्रीड़ा, ग्रह-नक्षत्र की केशच्युति तथा चतुर्दिक संहार से महाकाली के ताण्डव नृत्य की कल्पना की गयी है। जगदगुरु शंकराचार्य ने अपने "प्रपञ्चसार तंत्र" में कहा है कि यह महा-प्रकृति भाव में विभोर होकर क्रीड़ा-मग्न बालक की भाँति अनन्त जगत की सृष्टि कर उसका विनाश करती है। आनन्दमयी की बाललीला का विराम नहीं। वह अविच्छिन्न प्रवाह रूप से चल रही है। शिव पुरुष-रूप में सदा चरण के नीचे आकर देवी की इस संहार लीला को देख कर मुग्ध हो रहे हैं

इसका दूसरा पक्ष है जीव और जगत चित्त-कण को पाकर ही सचेतन या सजीव होता है, नहीं तो जड़वत ही रहता। प्रलयकाल में चिदेक घना मल माया जब विश्व की समस्त चैतन्य शक्ति को अपने भीतर प्रतिसंहृत करके अन्यत्र तत्व में लीन होती है तब जगत रूप शिव शव हो जाता है। काली प्रतिमा इस संहार तत्व का प्रत्यक्ष प्रतीक है। अर्थात यहाँ शिवतत्व निष्क्रिय और शिवशक्ति के अधीनस्थ है। "संसार छिलोना जखन मुण्डमाला को थायपैलि" एक बंगाली कवि पूछता है, कि जब आद्याशक्ति काली के पहले मनुष्य नहीं था उसने नरमुण्ड को कैसे प्राप्त किया? इसके उत्तर में एक विद्वान का मत है कि वस्तुत: यह नर मुण्डमाला नहीं, यह पचास वर्णमाल है। उस वर्ण माला का उल्लेख 'तन्त्रोक्त वाग्देवता' के ध्यान में आता यह केवल वर्ण ही नहीं है, मातृका वर्ण है। इसमें मातृ अथवा शक्ति निहित।

काली तत्व :—माँ काली प्रतिमा की कल्पना का आधार रहस्य क्या है, यह जानने के लिए काली-तत्व के रहस्य का ज्ञान भी आवश्यक है। तन्त्रशास्त्र में शक्ति के अनेक नाम एवं तदनुकूल रूपों के ध्यान के लिए साधना और उपसना का विधान है। काली-नाम दस महा-विद्याओं में प्रथम आता है। जिनमें काली का आठ नामों से ध्यान किया जाता है। काली-तत्व के ज्ञान के लिए हमें सर्वप्रथम कालतत्व को समझना होगा, क्योंकि काली उसके साथ काल का घनिष्ट सम्बन्ध है।

काली कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं, बल्कि महाकाल ही एक शक्ति है। जो सम्पूर्ण पदर्थों का संकलन या विनाश करता है, वही काल है। जिसके द्वारा द्रव उपचय व अपच ये संघटित होता है, उसे ही हम 'काल' कहते हैं।

काली नित्य और अखण्ड रूप में स्थित है। घड़ियों और दिन-रात का विभाग मनुष्य की कल्पना मात्र है। सूर्य की गति की सहायता से हम काल का विभाग करते हैं। कृत्रिम होते हुए भी यह विभाग हमारे सामने वास्तविक-सा प्रतीत होता है।

काल संहार मूर्ति है, इसी कारण इसके साथ शवच्छेदकारी कालका सम्बन्ध है। कुछ देर तक स्थिरचित्त से काली की मूर्ति का दर्शन करने से दर्शक के हृदय में संहार की विभिषिका स्वयं उपस्थित हो जाती है। काली की कराल मूर्ति तथा काल की रूद्रमूर्ति दोनों ही महाप्रलय

की सूचिका है। अब हम शक्ति की दृष्टि से कालतत्व को समझने की चेष्टा करें। शक्ति-तत्व की समीक्षा करने पर यह ज्ञात होता है कि विश्व के समस्त पदार्थ ही शक्ति के स्वरूप और संसार चरम उपादान हैं। यानी संसार की भैरवी मूर्ति ही काल का रूप है।

काल के कराल गाल में जीव-जगत निरन्तर ही निष्पेषित हो रहते हैं। काल गर्भ से सारे भूत पदार्थों की उत्पत्ति होती है। काल गर्भ में ही सबका लय हो जाता है। इसी कारण कहा गया है। "कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः। विश्व ब्रह्माण्ड काल के कवल में निपतित है। काल शक्ति को अतिक्रम करने की सामर्थ्य जीव में नहीं है, अब प्रश्न यह है कि काली किस तत्व का प्रतीक है। इसका उत्तर यह है कि जो काल शक्ति केअधीन और नित्य सिद्ध महाशक्ति है वही काल जगत का आधार हैं। उस जगदाधार का आश्रय है काली।

साधारण दृष्टि से सबका आधार काल होने पर भी वह अद्वैत नहीं है। अतः उसकी पृथक् सत्ता है। वह काल शक्ति की पराशक्ति में विलीन हो जाता है। इस महाशक्ति को ही उपनिषद् में सर्व लोकैकप्रतिष्ठा कहा गया है।

देवी के महात्म्य का वर्णन करते समय ऋषियों ने भी इसी परम तत्व का उल्लेख किया है। विश्व में जिधर देखते हैं उधर शक्ति की ही विचित्र लीला है। आकाश, वायु, ग्रह नक्षत्र, पर्वत शक्ति की ही अपूर्व माया है।

यह न भूलें कि विश्वकी समस्त शक्तियों की एक शक्ति है। बिखरी शक्तियाँ उस महाशक्ति की ही अङ्ग मात्र हैं, जैसे समुद्र की तरंगे। काली उस अनन्त शक्ति का आश्रय है। जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिगं चारों ओर छूट पड़ते हैं सूर्य से जिस प्रकार रश्मियाँ विकीर्ण होती है उसी प्रकार महाकाली से अनन्त शक्तिकणं उत्पन्न होते हैं।

मायादिक और काष्ठ सभी उसी की शक्ति हैं। शक्ति समूह उससे परमार्थतः अभिन्न होने पर भी स्थूल दृष्टि से पृथक रूप में प्रतिपन्न होता है। शक्ति की संख्या अगणित है। द्रव्य दाता ही शक्ति की मूर्ति है।

अन्यान्य शक्तियाँ भी काल शक्ति के अधी हैं। घट के द्वारा जल लिया जाता है परन्तु जल लेने की क्रिया घट शक्ति द्वारा निष्पन्न होती हैं। सारे कार्य व्यापार काल विशेष में ही अनुष्ठित होती है। काल शक्ति का अवलम्बन कर ही महाशक्ति का अव्याहृत काल समूह जन्मादि छः विकारी अवस्थाओं को प्राप्त होना है। काल में सब पदार्थों की उत्पत्ति सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपचय और नाश होता हैं।

काल के विशाल उदर में ही सम्पूर्ण वस्तुओं का परिपाक होता है। काल ही भाव पदार्थ का प्रसव कर्ता तथा सब प्रभेदों का हेतु है भर्तृहरि ने काल शक्ति के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है—

अव्याहताः कला यस्य काल शक्ति सुपाश्रितः।
जन्मादयो विकाराः षड् भावभेदस्य योनयः॥ १॥

अद्वैत दृष्टि से काल शक्ति परब्रह्म या पराशक्ति से अभिन्न है। वृहदा कालशक्ति सब पदार्थों का बीज स्वरूप है। क्यों कि इससे अनन्त कोटि वस्तुओं का उद्भव होता है। भोग,

भोक्ता और भोग्य सभी काल के रूप हैं। समस्त दृश्यमान वस्तु एक ही तत्व के विभिन्न आकार मात्र हैं।

शक्ति तत्व की दृष्टि से देखने पर काल को शक्ति विशेष के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

काली को काल शक्ति का आश्रय बतलाकर हमने यह देखा कि काली काल के अधीन नहीं है अर्थात वह काल कृत् उपाधि से वर्जित है काल शक्ति अन्यत्र अव्याहत होने पर भी महाशक्ति के निकट अत्यन्त विकल है। कलातीत वस्तु मानवी बुद्धि के लिए अगम्य है। मनुष्य के समस्त ज्ञान विज्ञान, कालिक अथवा काल विशेष द्वारा नियमित हैं। कालातीत होने से ही मैंने काली को प्रारम्भ में दुर्जेय कहा है। काल का दूसरा नाम रूद्र या सदाशिव है। रूद्र या उग्र मूर्ति धारण का अन्वर्थ नाम रूद्र है।

काली स्वरूप का वैज्ञानिकरहस्य—महाकाली का एक नाम कालरात्रि भी है जिसका सम्बन्ध प्रलय रात्रि के मध्यकाल से है। अर्थात संसार जब तक शक्तिमान रहता है। तभी तक वह शिव है। शक्ति के निकल जाने पर वह मात्र 'शव' रह जाता है। दूसरे अर्थ में यह शक्तिमान विश्व में उसकी प्रतिष्ठा नहीं है, अपितु शक्ति-शून्य (शव रूप) विश्व उसका आलम्बन है। इसी तरह रहस्यज्ञान के लिए महाकाली प्रतिक रूप है।

शत्रु— संहार करने वाली शक्ति का भयानक रूप होना चाहिए इसलिए शत्रु संहारिणि देवी की मुद्रा भयानक है। (हसन्मुखी) देवी का हंसना हमें यह बताता है कि जब योद्धा शत्रुपक्ष की सेना का संहार कर लेता है तो प्रसन्नता में अट्टहास करता है।

काली की चार भुजाएँ—काली की चारों भुजाओं के बारे में विद्वानों ने बताया है कि प्रत्येक वृत्त में ३६० अंश माने जाते हैं। उसमें ९०।९० के चार विभाग होते हैं। यही उस वृत्त की चार भुजाएं हैं। इन्हीं को स्वस्तिक कहा जाता है। खगोल के वही चारों स्वस्तिक इन्द्रोपलक्षित चित्रा नक्षत्र, पुरुषोपलक्षित रेवती नक्षत्र, तार्क्ष्योपलक्षित श्रवण नक्षत्र और बृहस्पत्युपलक्षित लुब्धक नक्षत्र है। इस प्रकार महाकाली के स्वरुप का सम्बन्ध इन चार नक्षत्रों से है ध्यान रक्खें कि ये सभी आकाशी नक्षत्र हैं। चित्रा नक्षत्र से श्रवण ठीक १८० अंश पर है रेवती से लुब्धक कुछ फासले पर है। आकाश की इन्हीं चारों भुजाओं का निरूपण करती हुई श्रुति का यह वचन है।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदा,

स्वस्ति न स्तार्क्ष्योऽरिष्ट नेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।

यही महाकाली की रूपकल्पना है।

मुण्ड माला का रहस्यः—महाकाली के गले की मुण्ड माला तथा उसकी अभय-मुद्रा हमे बता रही है कि वह संहाररूपा होते हुए भी हमें अभय करने की शक्ति से सम्पन्न है। एक यह भी है कि उस व्यापक तत्व से बाहर होई कैसे जा सकता है। महाकाली महाप्रलय की अधिष्ठात्री ही उग्रतारा है। प्रलय करना दोनों का समान धर्म हैं। सूर्य का रुद्ररूप ही महाशक्ति है।

काली दिगम्बरी क्यों ? काली का दिगम्बरी रूप; विश्व से उस शक्ति का आवृत होना है। जब शक्ति विश्व का निर्माण कर उस के भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं, फिर विश्व ही उसका वस्त्र हो जाता है। उस स्थिति में आवरण का अभाव हैं उस समय दिशाएं ही वस्त्र है।

श्री तारा काली:—श्री तारा काली के रूप का वैज्ञानिक रहस्य रात्रि १२ बजे से प्रातः ६ बजे तक अर्थात् सूर्योदय से पहले चतुरशीति (८४) भेद मिला, महाकाली की सत्ता बतलायी गयी है। इसके बाद 'तारा' का साम्राज्य है। हिरण्यगर्भ विद्या के अनुसार सम्पूर्ण विश्व आग्नेय होने से हिरण्य कहलाता है। अग्नि हिरण्यरेता हैं। उस हिरण्य मण्डल के केन्द्र में वह सौरब्रह्म-तत्व प्रतिष्ठित है अतएव सौरब्रह्म को हिरण्यगर्भ कहा जाता है। त्रिलोक के निर्माता एवं अधिष्ठाता स्वयंभू परमेष्ठी रूप—अमृतासृष्टि पृथ्वी, चन्द्रमारूपा मर्त्यसृष्टि के विभाजक एवं सञ्चालक विश्व केन्द्र में प्रतिष्ठित इन्हीं भगवान हिरण्यगर्भ का प्रादुर्भाव होता है।

हिरण्य गर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत।
सदाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

अतः जैसे विश्वातीत काल पुरुष की शक्ति महाकाली तारा है। अर्थात, घोरतमस में दीपक-बिम्ब भास सदृश सूर्य सर्वदा स्थिर है। बृहती-छन्द नाम से प्रसिद्ध विषाद वृत्त के ठीक मध्य में क्षोभ रहित होकर स्थिर रूप से भगवान सूर्य तप रहे हैं। परब्रह्म देवमातृ रूप शक्ति को ही वेद में 'अदिति' कहा गया है,

जो विश्व का अटल, अचल आधार है वही शक्ति 'अदिति' नाम से विद्यमान है— वही समस्त विश्व की जननी तथा पालिका हैं, वही ब्रह्माण्ड की अधीश्वरी हैं उसे ही हम दुर्गा, काली भवानी सरस्वती आदि अनेक नामों से मानते हैं। उससे भिन्न कोई शक्ति नहीं है।

वैष्णवी शक्तिः—चैतन्य-सत्ता स्थिति शक्ति से अभियान करे वही विष्णु है, उसी अधिष्ठान, चैतन्य का जो आश्रय ले जो शक्ति जगत की स्थिति का पालक हो वही वैष्णवी शक्ति है। इसका वाहन गरुड़ है।

वाराही शक्तिः—'वाराह' शब्द का अर्थ एक कल्प का परिमित काल है। क्यों कि 'वर' शब्द का अर्थ श्रेष्ठ अर्थात आत्मा है, इस कारण काल सत्ता ही सर्व प्रथम आत्मा को आवृत करती है। इस कारण काल शक्ति का ही नाम वराह है। यही पृथ्वी को पाताल से अपने दोनों दांतों से निकालता है। उस अधिष्ठान चैतन्य के आधार पर जो शक्ति निर्भर है वही वाराही शक्ति है। इसका कोइ वाहन नहीं है। कहीं-कहीं वाराही का वाहन महिष है।

ब्राह्मी शक्ति—ब्राह्मी सृष्टि जो ब्रह्मा की शक्ति है। यह अखण्ड चैतन्य समुद्र के जिस अंश में सृष्टि क्रिया प्रकाशित हो, उस चैतन्यांश का नाम ब्रह्मा है। उस चैतनाधिष्ठान से जो क्रिया शक्ति प्रवाहित हो वही ब्राह्मी शक्ति है, उसका वाहन हंस हैं।

ऐन्द्री शक्तिः—हस्तेन्द्रिय में अधिपति का नाम इन्द्र है इस हेतु इन्द्रियाधिष्ठित चैतन्य-वर्ग के अधिपति को इन्द्र कहते हैं। इसका वाहन गजराज ऐरावत है अतः रावात शब्द का अर्थ गति होता है। अत्यंत गतिशील वस्तु को ऐरावत कहते हैं। ऐरावत एक परिचालक है। जिस गमन शील पदार्थ का अवलम्बन कर तड़ित शक्ति परिचालित है उसी का नाम ऐरावत है। इस कारण ऐन्द्री शक्ति का ऐरावत वाहन होना उचित ही है।

नारसिंही शक्तिः—नृसिंह स्वरूप ज्ञान को कहते हैं क्यों कि आत्म स्वरूप विषय ज्ञान के उदय होने से ही मनुष्य श्रेष्ठत्व लाभ करता है। 'नृ' शब्द श्रेष्ठार्थ वाचक है।

इस कारण नृसिंह स्वरूप ज्ञान को कहा जाता है। यही हिरण्यकशिपु को मारता है। हिरण्य का अर्थ आत्मा है। जो हिरण्य यानी निर्विकल्प परमात्मा को विषयाभिमान रूप से प्रकट करे वही हिरणकशिपु है इस असुर को एक मात्र आत्मस्वरूप विषय के अर्थात ज्ञान ही विनष्ट कर सकता है। इसी नृसिंह की शक्ति को नारसिंही शक्ति कहते हैं।

धूमावती (अलक्ष्मी) दीपावली के पर्व पर रात्रि में जब हम महालक्ष्मी पूजन कहते हैं। उससे एक दिन पूर्व नर्क चतुर्दशी के दिन भोर में ही घर की बुढ़िया माँ पुराना सूप या चलनी, या कोई टूटी-फूटी वस्तु को पीटते हुए घर के कोने-कोने घूम कर कहती है "हमरी लक्ष्मी आवें दुःख दरिद्दर जावें।" कहीं कहीं औरते "छू-छू भी कहती हैं।

इसको वे 'दरिद्दर खिदना' कहती हैं। यह प्रथा देखने में अति विचित्र ज्ञात होती है साथ ही इसके रहस्य-ज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। यह प्रथा क्या है ? कब से चली ? आदि। इसका समाधान धूमावती को रूप उपाख्यान से हो जाता है। धूमावती देवी अलक्ष्मी दरिद्रा धूमावती आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। इनका स्वरुप बड़ा ही विलक्षण है—रुप बिल्कुल रुक्ष, खुले हुए केश, भयप्र मुख, भयानक दाँत हैं इनका रथ बिना वाहन का है। वह अपने हाथ में खाली सूप लिये हुए हैं।

रथ के ध्वज पर काक बैठा है। वह सब प्रकार अशुभ-सूचक है जिसे कुलक्षण कहते हैं। धूमावती (अलक्ष्मी) की जन्म कथा की कल्पना भी 'लक्ष्मी' के समान है। समुद्र मन्थन से लक्ष्मी और कुलक्ष्मी भी साथ-साथ प्राप्त हुईं। लक्ष्मी को तो विष्णु ने ग्रहण कर लिया। कुलक्ष्मी को जिसने ग्रहण किया, उसके घर आने पर जब वह देवपूजन के मन्त्र पढ़ता तो कुलक्ष्मी के कान फटने लगते जब वे धूप जलाते तो अंगजलने लगते। जब किसी के अनिष्ट होने की सूचना मिलती तो उसको अत्यन्त हर्ष होता है। अलक्ष्मी को स्वच्छता से महान घृणा होती थी। धीरे-धीरे उसके घर की पूरी सम्पत्ति नष्ट हो गयी। आपसी कलह बैर चरम सीमा पर पहुँच गया। इतने अमङ्गल के पश्चात—घर वालों ने कुलक्ष्मी को अपने घर से निकाल दिया।

वह कुलक्ष्मी घर से बाहर जाकर एकान्त में बिलखने लगीं। लक्ष्मी को जब अपनी सह-जाता की यह दशा ज्ञात हुई तो वे अपने पतिदेव विष्णु जी के पास गयीं। भगवान् विष्णु ने पुरे समाचार से अवगत होकर कहा कि हे कुलक्ष्मी ! तुम्हारा निवास वहीं होगा, जहाँ कुमती और कलह विद्यमान, होंगे, जहाँ अस्वच्छता होगी, पिता-पुत्र में बैर होगा तथा दरिद्रता का राज्य होगा।

इस कथा का रहस्योद्घाटन पंडित प्रवर मोतीलाल शर्मा ने इस प्रकार से किया है

विवर्णा चञ्चला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा।
विमुक्त कुन्तला वै सा विधवा विरल द्विजा॥
काक ध्वजा रथारूढ़ा विलम्बित पयोधरा।
सूर्पहस्तातिरुक्षाक्षा धूतहस्ता वरानना॥
प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहास्पदा॥ १॥

भगवती धूमावती (अलक्ष्मी) के ध्यान से ही निदान स्पष्ट है। आप्य प्राण को असुर कहा गया है, आग्नेय एवं ऐन्द्र प्राण देवता नाम से प्रसिद्ध है। आषाढ़ शुक्ला एकादशी वर्षा की अवधि मानी जाती है। इन चार महीनों में पृथ्वी पिण्ड और सौर प्राण आयोमय रहते हैं।

अतएव चतुर्मास में दोनों ही प्राण देवता असुर आप्य प्राण की प्रधानता से निर्बल हो जाते हैं। इनकी शक्ति दब जाती है। एतएव चतुर्मास देवताओं का सुषुप्तिकाल कहलाता है।

इतने दिन तक असुर प्राण का साम्राज्य रहता है, अत एव दिव्य की उपासना करने वाला भारती हिन्दू सनातन धर्मावलम्बी जगत कोई शुभकार्य [विवाह आदि] संस्कार आदि कार्य नहीं करते है।

इसी चतुर्मास में उस निर्ऋति का साम्राज्य रहता हैं। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी इसकी अन्तिम अवधि है अत एव धर्माचार्यों ने इसको नरक चतुर्दशी नाम से सम्बोधित किया हैं।

शक्त प्रमोद—धूमावती तन्त्र

इसी रात्रि को दरिद्रा रूपी इस अलक्ष्मी का गमन होता है, एवं दूसरे ही दिन रोहिणी रूपा कमला (लक्ष्मी) का आगमन होता है। कार्तिक कृष्ण आमावस्या को कन्या का सूर्य रहता है। इसी दिन सौर प्राण मलिन रहता हैं एवं रात्रि में तो यह भी नहीं रहता। उधर अमावस्या के कारण चन्द्रज्योति का भी अभाव है चारमास की वृष्टि से प्रकृति की प्राणमयी अग्निज्योति भी निर्बल हो जाती है।

इसी तमभाव के निराकरण के लिए एवं साथ ही कमला गमन के उपलक्ष्य में ऋषियों ने इस दिन दीपप्रकाश (दीपावली) करने का आदेश दिया है। कहना यही है कि निर्ऋति रूपा धूमावती प्रधान रूप से चतुर्मास में रहती है। कामुक मनुष्यों को सदा इसकी स्तुति करते रहना चाहिए।
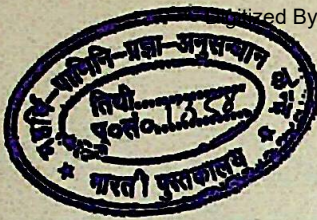
सरस्वती:

सरस्वती मयावृष्टा, वीणा पुस्तक धारिणी।
हंसवाहनसमायुक्ता विद्यादानं करोतु में॥

सरस्वती विद्या और वाणी की अधिष्ठात्री देवी हैं और ब्रह्मा की महाविद्या रूपी शक्ति हैं। सरस्वती का ध्यान साधक विद्या की अधिष्ठात्री देवी के रूप में करता हैं। माँ के कर में वीणा और पुस्तक सदैव रहती है। वह गौरवर्ण है। उनकी कान्ति दुग्धसागर को भी लज्जित कर देती है। उनकी मन्द मुस्कान को देखकर शरद का चन्द्रमा भी मलिन लगता है। ऐसे सुन्दर रूप वाली वीणावादिनी हंस वाहिनी माँ सरस्वती की कृपा से कुशाग्रबुद्धि वाले कवि लोग सारे संसार को ऐसी सरलता से देख लेते हैं जैसे उनकी हथेली पर आंवलेका फल रखा हो

इस प्रकार विद्या की देवी सरस्वती सरस्वती वाणी की स्वामिनी हैं जो अच्छे और बुरे में भेद करने की शक्ति देती हैं। जिनका वाहन हंस है। हंस में यह स्वाभाविक गुण बताया जाता है कि वह जलमिश्रित दूध को जल से विलग कर देता है। हंस पर आरुढ़ सरस्वती देवी वीणा बजा-बजाकर उसके स्वरों से ही सब गूढ़ से गूढ़ तम शास्त्रो एवं गुप्त भेदों का ज्ञान कराती है। वीणा की झनकार में वह आकर्षण है जिस पर मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी मोहित हो जाता है।

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता॥

सरस्वती की उपासना केवल सनातनी (पौराणिक) लोग ही नहीं करते बल्कि बौद्ध मत में वज्रयान सम्प्रदाय के लोग तथा जैन मतावलम्बी भी विभिन्न पद्धतियों से करते हैं।

सरस्वती का वाहन हंसः—सरस्वती के रूप और वाहन का वैज्ञानिक रहस्य क्या है, इसे देखना चाहिए।

आरुढ़ श्वेत हंसे भ्रमचित गगने दक्षिणे चाक्ष सूत्रम्।
वामे हस्ते च दिव्य कनकमयं पुस्तकं ज्ञानगम्या॥
सा वीणा वादयन्ति स्व कर जपै शास्त्र विज्ञान शब्दैः।
कोवन्ती दिव्ये कृपा कर. कमल धरा भारती सुप्रसन्ना॥

ब्रह्मा की त्रिगुणात्मक शक्तियों में सरस्वती भी एक है। ज्ञान, भारती एवं हंस वाहिनी आदि सरस्वती के पर्यायी। गुण वाचक ज्ञान है। पुराण का आधार वेद हैं। इसलिए पुराण में प्राप्त देव नामों का आधार भी वैदिक होना चाहिए। अस्तु सरस्वती की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही हुई है।

ब्रह्मा के जन्म के पश्चात् प्रथम वेद के रूप में सरस्वती की उत्पत्ति मानी जाती है। ब्रह्मा के चारों मुख से चारों वेद के रूप में निकलने वाला स्वर और उस स्वर के साथ होने वाले नाद की अधिष्ठात्री सरस्वती ही है।

सर+व+ती+यती=स्वर की स्वामिनी सरस्वती। स्वर ही ज्ञान का प्रतीत है। स्वर का वैदिक विवेचन स्पष्ट हो जाता हैं। सरस्वती परिष्कृत नाम पुराणों में विस्तार रूप में प्राप्त होता है।

ब्रह्म वैवर्त पुराण के प्रथम खण्ड में सरस्वती का वर्णन है। कथा के रूप से सर्वप्रथम पौराणिक उपाख्यान के आधार पर यह आता है। सरस्वती, गंगा का नदी रूप में हो कर पृथ्वी पर आने का वर्णन शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में है।

हंसासीना हसन्ती मृदुमधुरकलां वादयन्ती स्ववीणाम्,
तत्वग्रामं समस्तं प्रकटमविकलं सज्ञयन्ती विकासम्।
मुक्तामालां दधाना गुणगणमहिता स्तूयमाना सुरेन्द्रं-
र्वागीशा सुप्रसन्ना निवसतु वदनाम्भोरुहान्तः सदा मे॥

हंस पर आरूढ़ प्रसन्न वदना मधुर वीणा वादिनी, संगीत के समस्त आरोह अवरोह की विकासिनी मुक्ताहार धारिणी, गुण-गणः वन्दिता, सुरेन्द्रों द्वारा स्तूयमाना और सुप्रसन्नता सरस्वती मेरे मुख रूपी कमल में सदा निवास करें।

सरस्वती शुक्ल वर्ण और शुक्लाम्बरा, है। श्वेत रंग-ज्ञान, अमृत एवं शान्ति का बोधक हैं। अतः शारदा के साधकों को चाहिए कि वे शान्तचित्त होकर ज्ञानार्जन करें और उस अमृत तत्व को प्राप्त करें।

हंस आत्मा के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुआ हैं। अर्थात संसार रूपी कमल नाल से आबद्ध यह आत्मा ही सरस्वती का वाहन है। हंस श्वेत वर्ण, निश्छल और स्वच्छता का द्योतक हैं। उसकी लम्बी ग्रीवा मानो गहराई तक की खोज करने की प्रेरणा देती है। उसकी मन्दचाल विद्या और बुद्धि की गुरुता का लक्षण प्रतीत होता है।

शान्त स्वभाव एवं नीर-क्षीर विवेक उसके ज्ञान और सौजन्य का परिचय देता है। हंस के परों में पानी का प्रभाव न होना मानो संसार सागर में होते हुए भी उससे निर्लिप्त रहने का भाव है। इसी कारण तो हंस उपाधि से विभूषित है। अतः जिस पर भी शारदा की दया होती है, वहीं सर्व विद्या सम्पन्न होता है।

परम हंस पदः—जिससे विद्या की प्राप्त हो जाती है, उसे परम हंस तत्व प्राप्त होता है इसकी प्राप्ति के लिए योगियों का कहना है कि आज्ञा चक्र के उपर तीन पीठ स्थान है। विन्दु पीठ, नादपीठ और शक्ति पीठ ये तीनों पीठ कला देश में हैं। ॐ कार के नीचे निरालम्ब पुरी है, इसके नीचे गुप्त चक्र है। इसका नाम है सोम चक्र है। यह षोडशदल वाला है।

इन दलों को चक्र की सोलह कलाएँ कहते हैं। पहली कला का नाम कृपा है। शेष (२) मृदुता (३) धैर्य (४) वैराग्य (५) धृति, (६) सम्पत, (७) हास्य (८) रोमाञ्च, (९) विषय, (१०) ध्यान (११) सुस्थिरता (१२) गाम्भीर्य, (१३) उद्यम (१४) अक्षोभ (१५) औदार्य (१६) एकाग्रता। इसके नीचे एक गुप्त षड़दल पद्म है। उसे ज्ञान चक्र कहते हैं। इसके दलों पर मन केन्द्रित हो जाने पर क्रम से रूप, रस गन्ध, स्पर्श, शब्द और स्वप्न का ज्ञान उत्पन्न होता है।

इस पद्म के पञ्च सूक्ष्म भूतों के पञ्चीनकरण द्वारा पञ्च स्थूल भूतों की उद् भावना होती है। इसके एक-एक दल में क्रम से श्रद्धा ,संतोष, अपराध, दम्भ, मान, मोह, शोक, खेद, पवित्रता, अरति, सम्भ्रम, तथा उर्मि ये द्वादश वृत्तियाँ उद्भावित होती है।

आज्ञा चक्र के उपर अर्थात, शरीर के सर्वोच्च स्थान मस्तक पर सहस्र कमल कल्पित हुआ है। यह शुभ्रवर्ण तरूण रक्तवर्ण केसर द्वारा रञ्जित और अधोमुखी है। इसके पञ्चाशत दलों पर आकारादिसे क्षकार कर्णिका में गोलाकार चन्द्र मण्डल है।

इस चन्द्र मण्डल के छत्राकार से उपर ऊर्ध्वमुखी द्वादश दल कमल की कर्णिका में त्रिकोण यन्त्र है इनके चारों ओर अमृत सागर के कारण यन्त्र मणि पीठ है उसमें नादविन्द के ऊपर हंस पीठ का स्थान है।

हंस पीठ के ऊपर गुरु पाद का स्थान है। इस स्थान में गुरूदेव के पाद पद्मका ध्यान किया जाता है। यही हंस पीठ विद्या रूपी ज्ञान का स्थान है, यहीं से अब साधक विद्याभार के कारण परम हंस की उपाधि से विभूषित होता है।

हंस के आधार पर साधारण जन साकार रूप में उपासना करने के लिए प्रतीक रूप में ध्यान करते हैं। सुधा सागर ही जल है और उसमें रक्तवर्ण कमल तथा हंस विराजमान रहता है।

कमल के दल भी तप प्रवृत्तियाँ हैं—जिनके आगे हम ज्ञान तत्व विद्या के समीप पहुँच जाते हैं। वही हंस पीठ है। नाद का प्रतीक हाथ में वीणा है। विद्या का प्रतीक हाथ की पुस्तक है।

सरस्वती का वाहन मयूरः—मयूर सुवर्ण और स्वच्छ होता है जिसके अंगों पर अनेक कला कृतियाँ हैं। उसकी शोभा को देखते ही मानव मुग्ध हो जाता है। जब वह अपनी वाणी को वातावरण में बिखेरता है तो उसे सुनकर जहाँ युग्म आनन्दित होते हैं। वही विरहिणियाँ व्याकुल होती हैं। मयूर मैथुनी क्रिया से पैदा नहीं होता है। वह विषय भोग से परे होता है। वर्षा काल में जब वह आनंदातिरेक में आता है तब वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ता है, जिसको चतुर्दिक खड़ी मोरनियाँ ग्रहण कर लेती हैं। इस प्रकार मोर का वीर्य

गर्भ तक पहुँच पाता है। मयूर के गुण, नृत्य, कला, संगीत, विद्या, शक्ति एवं ज्ञान को स्वयं ग्रहण करने का प्रतीक है। मयूर के संमुख वक्रचाली विषधर भी भयभीत और बलहीन हो अन्धा हो जाता है तब मयूर उसको भक्षण कर जाता है।

जैसे मयूर पर भुंजग के विषका कोई प्रभाव नहीं पड़ता; ठीक उसी प्रकार विद्या के सम्मुख अविद्या—(अज्ञानी) की पराजय हो जाती हैं। और उसका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है योगवासिष्ठ के उत्पत्ति प्रकरण में आकाश मार्ग का वर्णन करते हुए वशिष्ठ मुनि भगवान् राम से इस प्रकार कह रहे हैं—

मयूरहेमचूड़ादि पक्षिभिःक्वचिदावृतम्।
विद्याधरीणां देवीनां वाहनैर्विहितास्पदैः॥
क्वचिद् भ्रान्तरोन्नृत्यद्गुहमायुरमण्डलम्।
क्वचिदग्निशुकैः श्यामं शाद्वलानामिवस्थलम्॥

(योगवासिष्ठ उत्पत्ति प्रकरण सर्ग २४ श्लोक ५१।५२॥)

विद्या का स्वरूप विभिन्न रूपों में माना गया है। विद्याको दुर्गा माना गया है। विद्या को ब्रह्म ज्ञान भी कहा जाता है। साधना रूपा विद्या को ही "या विद्या परमामुक्ते र्हेतु भूता सनातनी" कहा जाता है।

सरस्वती का ब्रह्मा की भार्या होना—माँ वीणा-पाणी सरस्वती ब्रह्मा की शक्ति हैं। पुराणों में यही ब्रह्मा की- भार्या कही गयी हैं। पुत्री भी कहा गया हैं। सर्व साधारण जन कथा के गूढ़ रहस्य को न जानने के कारण उनकी जिज्ञासा शान्त नहीं होती है।

भौतिक दृष्टि से देखने से ऐसी कथाएँ बुद्धि को अवश्य भ्रमित कर देती हैं। किन्तु इस रहस्य का ज्ञान वैदिक साहित्य के समीप पहुँचने पर सारी शंकाएँ दूर हो जाती है। जैसे—सरस्वती का ब्रह्मा की पुत्री होना जगपिता ब्रह्मा से ही समस्त विश्व की रचना हुई है और ज्ञान स्वरूप सरस्वती ब्रह्मा की शक्ति हैं। इस विषय पर वैदिक विद्वान पं० शिव शंकर काव्यतीर्थजी ने त्रिदेव-निर्णय वेदतत्व प्रकाश में लिखा है—

वाणी या शब्द को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया 'वाक' को संस्कृत में ब्राह्मी भारती, गिरा वाण वाग् सरस्वती कही है। जिसको ब्रह्मा ने त्यागा है वह मानुष (वाक) है। जो अपनी भार्या सरस्वती

(१) ब्राह्मी तु भारती भाषा, गीर्वाग् वाणी सरस्वती, हैं;

वह देवी वाणी कहलाती है। वाणी की उत्पत्ति वायु से होती है। और इसको वायु ही ग्रहण कर लेता है। भीतर की वायु की सहायता से वाणी उत्पन्न होती है और वह पुनः बाहर वायु में समाजाती हैं। विचार करें कि जो वाणी मुख से निकलती हैं वह कहाँ जाती हैं? तब आपका उत्तर होगा कि वह बाहरी वायु में लीन हो जाती हैं।

परन्तु यदि भीतर की वायु इसे उत्पन्न न करे तो इसकी उत्पत्ति न होगी। परन्तु विचार करने पर यह ज्ञात होता हैं कि बाह्य और आन्तरिक वायु दोनों एक ही हैं। अब ज्ञात हो कि वायु एक महान देवता हैं—जिसने मोहिनी वाणी को भीतर से बाहर प्रकट किया

और पुनः उसकी मधुरता को देख कर अपने में ही मिला लिया। वाणी का स्वभाव ही हैं उत्पन्न होकर वायु में मिल जाना जिस हेतु वायु से वाणी उत्पन्न होती हैं उस हेतु मानों कन्या के ही तुल्य हैं। अब वायु ही उसे पुनः अपने में लीन कर लेता हैं, यही मानो उसका अनुचित व्यवहार हैं। इस कथा से सिद्ध होता हैं कि यह केवल अलंकार रूप मात्र भाव हैं।

वाणी में शक्ति हैं जो पशुपक्षी और मनुष्य को मोहित कर लेती हैं। विषधर भुजंग भी परम सुधामय हो जाता हैं। वैदिक साहित्य में वाणी की महिमा का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया हैं। ऋग्वेद के वाक सूक्त में इसकी शक्ति के स्वरूप का वर्णन मिलता हैं।

सरस्वती नदी—नदी में स्नान करते समय हम यह प्रार्थना करते हैं—"गङ्गा च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती" भले ही प्राचीन काल में पञ्चनद प्रदेश में बहने वाली' जलस्वरूपा सरस्वती सरिता आज लुप्त हो गयी है, परन्तु प्रयाग के त्रिवेणी संगम में प्रत्यक्ष रूप में जलस्वरूपा गङ्गा-यमुना का संगम देखते हैं और वहाँ स्नान कर शरीर को शुद्ध कर लेते हैं।

वहा संगम पर बड़े-बड़े महात्मावों की अमृतवाणी सरस्वती सरिता के रूप में प्रस्फुटित होती हैं। जहाँ हमें ज्ञानामृतपान करने को मिलता हैं वैदिक साहित्य में इस प्रकार माँ वीणापाणी के विविध रूपों का रहस्य हैं।
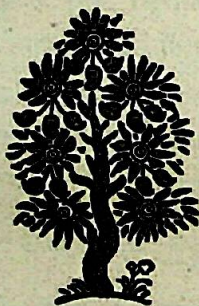
लक्ष्मी वाहन उल्लू

शुभ्र वस्त्र परीधानां मुक्ताभरणभूषिताम् ।
पङ्कजासन संस्थानां स्मेराननसरोरुहाम् ॥
शरदेन्दु कलाकान्तिस्निग्धनेत्रां चतुर्भुजाम् ।
पद्मयुग्माम भयदां वरव्यग्रकराम्बुजाम् ।
अभितो गज युग्मेन सिच्यमानां कराम्बुना ।
सञ्चिन्त्यैवं लिखेद्देवीं कर्पुरागुरुचन्दनैः । (१)

महालक्ष्मी की उत्पत्तिः—पुराणों के अनुसार लक्ष्मी की उत्पत्ति समुद्रमन्थन से बतायी गयी है। जिसका वैज्ञानिक रहस्य वैदिक सूत्रों से स्पष्ट होता है। जिसका भाव है कि— समुद्रवाची आकाश है, उसमें रहने वाला विष्णु सूर्य है। सूर्य की किरणें देवता हैं, और नीले—काले मेघ असुर हैं। आकाशीय पदार्थ के परस्पर आकर्षण—संघर्षण का नाम समुन्द्र-मन्थन है। दिव्य शक्ति का दिव्य तेज ही लक्ष्मी है और जल मानों अमृत है। वहीं श्री लक्ष्मी जी की उत्पत्ति हुई।

लक्ष्मी ऐश्वर्य, सम्पदा की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। विश्व का पालन करने वाली भगवान् विष्णु की शक्ति महालक्ष्मी जी हैं। अतः विश्व का पालन करने वाली लक्ष्मी से सभी प्राणी अपने कल्याण-हेतु धन-धान्य की वृद्धि की कामना करते हैं। श्री के उपासकों की प्रवृत्तियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। उसी प्रकार श्री लक्ष्मी भी उपासक के साधना-नुरूप प्राप्त होती हैं। वेद में उनके पूरे रूपों के नाम दिये गये हैं। सद बुद्धि स्वरूप, कमलासना, श्री विष्णु के साथ। धन तथा मोक्ष दोनों को देने वाली गज लक्ष्मी (हस्ति वाहिनी) राजस प्रकृति के उपासक उल्लूक वाहिनी और तामस प्रवृत्ति के उपासकों प्राप्त होती है।

वाहन उल्लूः—शास्त्रों में लक्ष्मी के वाहन अनेक बताये गये हैं जैसे हाथी, गरुड़, कमल और उल्लूक आदि, किन्तु लोकविश्रुत वाहन श्री लक्ष्मी देवी का उल्लू ही है। लक्ष्मी प्राकृत सम्पदा की अधिष्ठात्री देवी हैं। अतः उनका वाहन उल्लू अवश्य लक्ष्मी का कृपा-पात्र होता है। संसार में अन्य वाहनों के रहते लक्ष्मी देवी को उल्लू क्यों पसन्द है, यह विचारणीय है। इसके लिए लक्ष्मी की प्रकृति तथा उल्लू के स्वभाव पर ध्यान देना होगा।

भारतीय मनीषियों ने लक्ष्मी की तीन गति बतायी हैं—(१) दान (२) भोग (३) नाश। इनमें उत्तम प्रकृति के महापुरुष सौभाग्यवशात लक्ष्मी की कृपा होने पर प्रथम दो गतियों अर्थात दान और भोग द्वारा पुण्य कार्य करते है। तीसरे प्रकार के वे व्यक्ति होते हैं जो घर में अपार सम्पत्ति रहने पर भी बिना जूते पहने, बिना उत्तम और पूर्ण वस्त्र के, बिना उपभोग के रह जाते हैं और उनकी सगृहीत विशाल धनराशि एक दिन विनष्ट हो जाती है। संसार में ऐसे लोगों को कृपण आदि अनेक संज्ञाओं से विभूषित किया जाता है परन्तु ठेठ भाषा में उल्लू कहे जाते हैं।

विद्वानों का कहना है कि मनुष्य तीन प्रकार के हैं:—अधम, मध्यम, उत्तम। अधम (तामस) केवल धन की, मध्यम धन तथा मान की और उत्तम केवल मान की कामना करते हैं–

अधमाधनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमा।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानोहि महतां धनम्॥

कहा जा सकता है; अधमा प्रवृत्ति वाले उल्लू, मध्यमा वाले हाथी और उत्तमा वाले गरुड़ के प्रतीक हैं। भगवती लक्ष्मी के भक्त तीन प्रकार के हैं–(१) सात्विक (२) राजसी (३) तामसी। सात्विक प्रवृत्ति वाले भक्त देवी की आराधना गरुड़वाहना रूप में करते हैं, राजसी प्रवृत्ति वाले पद्मासना का या गजवाहिनी का तथा तामसी उल्लू वाहिनी के रूप में। उल्लू की विशेषताएं निम्नलिखित हैं– (१) वह प्रकाश में अन्धा बना रहता है और रात्रि के अन्धकार में भली भाँति देखता है–अर्थात् लक्ष्मी का तामस। इसी कारण बहुधा कहा जाता है कि सरस्वतीके भक्त प्रायः निर्धन और लक्ष्मी के भक्त प्रायः धनी हुआ करते हैं। यहाँ सरस्वती के भक्त से विद्वान तथा लक्ष्मी के भक्त से धनी अर्थ का बोध होता है। दोनों वर्गों की अपनी-अपनी पृथक विशेषताएं हैं। जिनमें लक्ष्मी-पात्र के गुण उल्लूकवत होते हैं।

(२) उल्लू कर्कश स्वर बोलने वाला एक भयानक पक्षी है जिसमें न कोकिल का माधुर्य है, न मयूर की कूक, न पपीहे की टीस। उसके बोलते ही लोग डर जाते हैं, खग-शावक दुबक कर अपने नीड़ में बैठ जाते हैं। लक्ष्मी के तामस भक्तों से उनके मुहल्ले वाले इसी प्रकार भयभीत रहते हैं।

(३) उल्लू गिद्ध के कोटर में निवास करता है और रात्रि में सोये पक्षियों पर अचानक आक्रमण कर उनका मांस भक्ष करता है। चुपचाप आक्रमण करते और रक्तशोषण की यह प्रवृत्ति लक्ष्मी के तामस भक्त का लक्षण है। इसको इस तरह से भी कहा जा सकता है कि उल्लूकवत लक्ष्मी के तामस भक्त तामसी प्रवृत्तियों के परिणाम स्वरूप धर्माधर्म का विवेक त्याग कर अन्धकार में अपनी जीविका को खोजा करते हैं, चोर बाजारी करते हैं।

शास्त्रों में भी उल्लू वाहिनी लक्ष्मी का वर्णन यत्र तत्र है। पद्म या हाथी राजसी वृत्तियों का, गरुण लक्ष्मी की सात्विक उपासकों का और पद्म ऐश्वर्यका सूचक प्रतीक है। हाथी में जितनी शक्ति है, उतना ही गौरव। विष्णु को साथ जब लक्ष्मी का ध्यान किया जाता है तब हाथी उनके वाहन-रूप में प्रमुख होता है। इसके विपरीत गरूण आकाशगामी अर्थात् शून्यचारी, योगी दार्शनिक और छल-कपट आदि विकारों से ऊँचा रहने वाला जीव है। यह उन व्यक्तियों का प्रतीक है, जो अनेक जन्मों के पुण्य के अन्तर श्री, विद्या, सौभाग्य और अन्य सभी सुखों के साथ अनन्त धन का उपयोग करते हैं। ऐसे पात्र संसार में कुछ ही होते हैं, सम्भवतः एक दो।

हमारे देश के कई प्रान्तों में उल्लूक वाहना लक्ष्मी का पूजन एवं व्रत भी होता है। वृतत लक्ष्मी चरित ब्रजभाषा में, भाद्रपद मास में होने वाले लक्ष्मी-व्रत की कथा में उल्लूक-वाहना लक्ष्मी का वर्णन है तथा लक्ष्मी के वाहन उल्लू के परिवार की सेवा करने पर उल्लू दम्पति के कहने में एक पिताहीन निर्धन ब्राह्मणकुमार के धनी होने का विस्तृत वर्णन दिया गया है। उल्लू को यमदूत भी माना गया है।

स्वभाव की कठोरता; नीरसता, एकाग्रता आदि के कारण लक्ष्मी के तामस भक्तों को लोक में उल्लूकवत ही माना जाता है क्यों कि धन के ये लोभी अपने गद्दी पर बैठे अपना पूरा जीवन केवल ऊर्थसाधना में बिता देते हैं। लोभी को विश्व की जागृति से कोई मतलब नहीं, वह परमयोगी सा ध्यान लगाये अपनी साधना में खोया रहता है।

ऐसे लोगों को उल्लुओं के परिवार के अन्य मूर्ख बच्चों के नाम से ही पुकारा जाता है। उल्लू कई प्रकार के हैं—(१ चुगद (२) खूसट (३) घुग्घू आदि।

खूसट और चुगद आदि नाम आज विशेषण होकर समाज में प्रचलित हैं। इसी भाँति एक शब्द है उजबक। मूढ़, अशिक्षित, असंस्कृत तथा बे कायदा व्क्तियों को उजबक कहा जाता है।

इन शब्दों पर विचार करते ही सहसा इनके नाम पर आधृत कुछ जातियों पर ठहर जाना पड़ता है। चुगद से चुगदाई, उजबक (उजबकिस्तान) कजाक (कजाकिस्तान) क्या इतिहास के विद्वान कह सकते हैं कि किसी समय में ये जातियां धनी थी जिनमें लक्ष्मी की उपासना प्रचलित थीं? ऋण देकर ब्याज खाने वाले आंगा (काबूली) क्या इन्हीं लक्ष्मी साधकों की एक शाखा तो नहीं?

लक्ष्मी के वाहन उल्लूक क्यों?

पहले बताचूका हूँ धन की उपासना का माध्यम प्रथम सत्य मार्ग से धनो उपार्जन करने वाला धर्म का पालन करते हुये लक्ष्मी की सात्विक उपासक कहा जाता वहाँ लक्ष्मी के वाहन का प्रतीक कमल और गरूण है, यहाँ लक्ष्मी भगवान विष्णु के साथ होती हैं दुसरा धन प्राप्ति का साधन निकृष्ठ कार्म, तामसी अर्थात् धोखा, चोरी, डाका, आदि उपायों द्वारा उर्पाजित धन को स्वामी में अतिशय मोह होता है। वह धन हेतु किसी प्रकार का संकोच नही करता उसे किसी भी अपराध से भय नहीं होता है।

उल्लूकयातुं शुशुलूकायतुं जहिश्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुर्पर्णयातुमुत गृध्रायातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र।

[ऋग्वेद मं० ७।सू० १०४]

अर्थात् गरूण के समान मद [घमण्ड] गीध के समान को कोक [पक्षी] के समान कामी कुत्ते के समान मत्सर। उलूक के समान मोह [मूर्खता] और भेड़िया के सामान क्रोध को मारकर भगाये अर्थात काम, क्रोध; लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि ६ विकारों को अपने अन्तःकरण से हटा दीजिये इन हिंसा आदि वाह्य और अर्नान्तिध आत्मा से वासनाओं के त्याग से हो मनुष्य उत्तम हो सकता है।

शीतला वाहन गर्दभ

नमामि शीतला देवी रासभस्थां दिगम्बरां।

सामान्य जनता में मानव-शरीर में भीषण प्रदाह युक्त फफलों के रूप मेंप्रकट होने वाली देवी शीतला का उनके प्रचण्ड विक्रम तथा भयावह शक्ति के कारण अत्यधिक महत्त्व है। यद्यपि इस श्रद्धा के मूल में भय और आत्म रक्षा की भावना ही प्रबल है, फिर भी अन्यान्य देवी स्वरूपों में शीतला का स्थान दुर्गा के बाद सर्वोपरि हैं। वास्तव में जिसे हम शीतला देवी कहते हैं उयका नाम 'विस्फोटक हैं। परन्तु उनके भयानक प्रदाह के कारण उत्पन्न असह्य बेचैनी और उसके शमनार्थ शीतलो प्रचार के कारण उसका नाम 'शीतला' पड़ गया हैं। स्तोत्रों में भी उन्हें शीतला हो कहा गया हैं—

नमामि शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बरां।

इसमें शीतला देवी का रासभस्थित (गदहे पर सवार) और दिगम्बरी (नग्न) रूप में ध्यान किया गया है। जिस प्रकार दुर्गा सिंह पर, शिव नन्दी पर, गणेश मूषक पर, कार्तिक मयूर पर, विष्णु गरुड़ पर, सरस्वती हंस पर; इन्द्र एरावत पर सवार रहते हैं, उसी प्रकार देवी शीतला गदहे पर सवारी करती हैं। कहीं-कहीं इनके रूप का वर्णन कुछ और विराट ढंग से किया गया हैं।

माता शीतला के एक हाथ में जलकलश, दूसरे में माला तथा लाल वर्ण की ध्वजा है। जिसमें सूचि चिन्ह अंकित हैं। ध्वजा में चिन्हों का महत्व भी कम नहीं। काम देव की ध्वजा में मकर का चिन्ह हैं, शिव की ध्वजा में वृष, अर्जुन की ध्वजा में हनुमान आदि चिन्ह हैं। जिनका पौराणिक महत्व अलग-अलग हैं। इस पर हम आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी विचार कर सकते हैं। एक स्थल पर मस्तक पर मैले वस्त्रो की पोटली लिये शरीर पर लालवस्त्र धारण किये शीतला देवी गर्दभ पर बैठो चित्रित की गयी हैं इनका सबसे प्रिय स्थान नीम वृक्ष के नीचे होता हैं। इन्हें सुगन्ध युक्त पुष्प-बेला, गुलाब अड़हुल आदि अधिक प्रिय हैं। माता शुक, कपोत, अरूण शिखा पक्षियों के छौनों का खेल प्रिय है।

अथ वक्ष्ये महेशस्य वस्त्र प्रक्षालिका तु या।
शीतले ति च विख्याता तस्याः मंत्रं सुसिद्धिवम्॥

इस स्रोत में शीतला को महेश की (वस्त्र प्रक्षालिका) (कपड़ा धोने वाली) बताया गया है, तथा शीतला के ध्यान में 'तैलादि मल संयुक्त वस्त्र पोटलि शीर्षिकाम्, के अनुसार शीतला के मस्तक पर मैले-कुचैले वस्त्रों की पोटली बतायी गयी है।

क्या वस्त्र प्रक्षालिका से अर्थ धोबिन का है ? यदि यह कहा जाय कि शीतला देवी महेश की वस्त्र-प्रक्षालन करने वाली उनकी धोबिन है तो धोबिन होने से उनके गर्दभ वाहन की एक संगति बैठ जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भगवान शंकर तथा देवी दुर्गा [पार्वती] के अनेक गणों और सहचारियों में शीतला भी हैं, जो उनकी वस्त्र प्रक्षालिका होने से उनके दल में रहती हैं।

शिव परिवार के वाहनों में सिंह, वृषभ, मूषक; मयूर आदि भिन्न-भिन्न स्वभावों वाले वाहनों की विचित्रता विदित ही है, फिर यदि इस 'महेशस्य वस्त्र प्रक्षालिका' का रासभ अपनी विचित्रता, सरलता, सहनशीलता आदि गुणों के कारण इस परिवार में आ जाय तो आश्चर्य ही क्या है ?

अवश्य ही तांत्रिक साधना में जिस समय देवी के विस्फोटक रूप की कल्पना की गयी होगी, शीतला को शिव परिवार की सदस्या बनाने के लिये 'महेशस्य वस्त्र प्रक्षालिका' कहकर प्रक्षालिका का सामान्य पशु गर्दभ को उनका वाहन बना दिया गया होगा। शाबर मंत्र के प्रणेता साक्षात् गिरिजापति ही हैं, अतएव तांत्रिकों द्वारा शीतला को शिव से सम्बद्ध कर उन्हें शिव की धोबिन बना देने में वैचित्र्य नहीं; संगति ही है। शीतलाष्टक नामक प्रसिद्ध शीतला स्तोत्र में देवी का जिस रूप में आवाहन किया गया है, वह बड़ा ही विचित्र है। उसका रूप इस प्रकार है—शीतला रासभ [गदहा] पर स्थित है। वह नग्न है और झाड़ तथा जल-कलश हाथ में लिये हुए है, उनकी ध्वजा में सूप का चिह्न है।

उक्त स्तोत्र में आगे कहा गया है कि मैं सब रोगों तथा भय को दूर करने वाली शीतला देवी की वंदना करता हूं। शीतलता को प्राप्त कर विस्फोटक का महान भय दूर हो जाता है। जो कोई दाह से पीड़ित होकर 'शीतले शीतले' कहता है, उसका घोर विस्फोट का भय शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो तुमको जल के मध्य में रखकर तुम्हारी पूजा करता है, उसके घर में विस्फोट का भय नहीं होता। शीतला का गंध, पुष्पादि युक्त पूजन करने पर ज्वर ग्रस्त जीव का तथा नेत्रहीन प्राणी की तुम जीवन रूपी औषध कहलाती हो। हे शीतले ! तुम मनुष्यों के कठिन शारीरिक रोगों को दूर कर देती हो। विस्फोटक से पीड़ित मनुष्यों को तुम्हारी कृपा एक मात्र अमृत-रूपिणी औषधि है।

गल-गण्ड, ग्रह आदि तथा मनुष्यों के अन्य दारुण रोग तुम्हारे ध्यान मात्र से नष्ट हो जाते हैं। पाप-रोग कोई भी मन्त्र औषधि नहीं हो सकता। उसकी औषधि हे शीतले ! तुम्हीं एक धात्री हो। अन्य देवताओं को मैं नहीं देखता। मृणाल तंतु के समान नाभि और हृदय के मध्य तुमको जो मनुष्य ध्यान करेगा, उसकी मैं स्थित नहीं होगी। 'हे शतते' तुम जगत की माता-पिता हो तुम जगत की धात्री हो।

रासभ गर्दभ, खर, वैशाख-नंदन, शीतला-वाहन और दूर्वाकन्दनिकन्दन ये सब के नाम हैं। शीतला के सामने जो घर पड़ता है उसके घर में बच्चों को शीतला रोग नहीं होता। स्कन्द पुराण में भगवती शीतला के बारे में निम्नलिखित वर्णन है—

तत्रैव संस्थितां पश्येद्देवीं दुःखांतकारिणीम्।
शीतलेति पुराख्यातां युगे द्वापर संज्ञिते ॥

कलौ पुनः समाख्यातां कलि दुःखान्त कारिणीम् ।
शीतलं कुरुते देहं बालानां रोग वर्जितम्
पूजिता भक्ति भावेन तेन सा शीतला स्मृता ।।
विस्फोटानां प्रशान्त्यर्थं बालानां चैव कारणात् ।
मानेन मापितान्कृत्वा मसूरां स्तत्र कुट्टयेत् ।।
शीतला पुरतो दत्वा बाला: सन्तु निरामया: ।
विस्फोट-चर्चिकादीनां वातादीनां शमो भवेत् ।।
कर्पूरं कुसुम चैव मृगनाभिं सुनन्दनम् ।
पुष्पाणि च सुगन्धानि नैवेद्य घृत पायसम ।।
निवेद्य देव्यै तत्सर्वं दपत्योः परिधापयेत् ।।
रम्यां शुक्ल पक्षे तु मालां बिल्वमयीं शुभाम् ।।
भक्त्या निवेद्य तां देव्यै सर्वसिद्धिमवाप्नुय्यात् ।

इनके वाहन गदहे के सम्बन्ध में भी कुछ कहना आवश्यक है। गद का अर्थ है रोग। 'हा' का अर्थ हनन करना, समाप्त करना। अतः रोग हनन करना गुण होने से 'वैद्य' का एक नाम 'गदहा' भी है। सामान्य गदहा पशु में भी रोगों को हरण कर लेने की अद्भुत क्षमता है। गदहा जन्म लेते समय ही जो मल करता है, वह बच्चों की 'घूटी' (एक प्रकार की औषधि है जिसे घोल कर नवजात शिशुओं को पिलाया जाता है) के काम आती है। अनुभवियों तथा चिकित्सा शास्त्रीयों का कथन है कि गदही का दूध चेचक का भयानक प्रकोप हो जाने पर रोगी को पिलाने से अधिक लाभ होता है। गदहे जहाँ होते हैं, गदहे के साथ जो रहते हैं, उन्हें तथा वहां पर चेचक का प्रकोप नहीं हो सकता। आयुर्वेद में भी गदहे की लीद जला के धुआँ देने से चेचक के शान्त होने का वर्णन है। गदही का दूध लेप करने से चेचक के दाने सूख जाते हैं।

हम जिस देवता या देवी की उपासना करते हैं, उसका वाहन भी तदनुरूप होना चाहिए। अतः माता शीतला का वाहन भी उनके अनुरूप ही गर्दभ (गदहा) है। इस प्रकार भी भयानक विस्फोटक (चेचक) रोग के शमनार्थ (प्रसन्नार्थ) गदहे के दूध, लीद, आदि का उपचार उपयोगी होने से दोनों का पारस्परिक संबन्ध होने का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि शीतला ऐसे उपचारों के लिए उपयोगी पशु दबा कर, अपने वश में करके, मनमाना करती है।

बल्कि अर्थ यह होना चाहिए कि विस्फोटक जैसे रोग के लिए शीतला को प्रसन्न करने के अभिप्राय से गर्दभ के दूध, लीद, आदि का उपयोग करें अर्थात उनके वाहन की सेवा करें। वेदों और पुराणों में भी गधे का वर्णन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। पुराणों में शीतला का वाहन गर्दभ ही है। रक्षा आदि कार्यों में गदहे को रखने के बारे में भी निर्देश है, गदहे से मनुष्य को कठिन श्रम, संतोषी-जीवन की शिक्षा मिलती है।

—०—

छिन्नमस्ता

छिन्नमस्ता शक्ति की रूपकल्पना भी बड़ी रहस्यमय है। इनके "बायें" हाथ में स्वयं का कटा हुआ शिर है और दाहिने में एक खड्ग है। वह कटे हुए शिर से निकली हुई रक्त-धारा पी रही है। इनके तीन नेत्र हैं तथा दिगम्बरी देवी रूपवती होते हुए भी बड़ी भयावह है।

इस सन्दर्भ में कहा गया है कि विभु की इच्छा मात्र ही क्रिया का रूप ग्रहण करती है। उसकी इच्छा मात्र से क्रिया होने लगती है। इसलिये सृष्टि-क्रिया में जन्तुओं की तरह उसे हस्त पादादि की आवश्यकता नहीं होती है।

हस्त पादादि स्थूलजगत् के स्थूल उपादान हैं, जो शक्ति के परिवर्तित रूप हैं और सूक्ष्म शक्ति से संचालित होते हैं। इसलिये अलंकृत भाषा में कहा जाता है कि इसके हजारों शिर, हाथ-पैर हजारों नेत्र हैं और यह विना हाथ-पैर के, चलती-फिरती है और बिना आँख के देखती है।

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना, बिनु कर कर्म करै विधि नाना।

याने बिना हाथ-पैर के दैवि शक्ति विश्व संचालन का कार्य करती है। छिन्नमस्ता के रूप में यही दर्शित किया गया है कि प्राणि-मात्र के शरीर में मस्तक सर्वोत्तमाङ्ग समझा जाता है, किन्तु मानव रूप में कल्पना करने पर भी, 'विभु की शक्ति के लिए कल्पित इन्द्रियों और मस्तक का भी कोई महत्व नहीं है। शक्ति की सृष्टि-क्रिया में हवा बिजली या आकाश के मस्तक की कल्पना जिस प्रकार निरर्थक है, उसी प्रकार सर्वव्यापी शक्ति के "मस्तक" और अन्य इन्द्रियों की कल्पना भी निरर्थक है, ये केवल अर्थशील शक्तितत्व का प्रतीक मात्र हैं।

छिन्न-मस्ता के ध्यान स्तव में नाभि चेतना के विस्तार के बिन्दु स्थान में श्वेत कमल के भीतर बन्धूक पुष्प की तरह लाल जगमगाता हुआ सूर्य-मण्डल है। उसके भीतर महायोनि चक्र है। उसके मध्य में विपरीत मिथुनकर्म में रत काम और रति की पीठ पर करोड़ों मध्याह्न सूर्य की भाँति जगमगाती हुई तेजो रूप शिवा है।

सृष्टि के प्रारम्भ में चित के महाविस्तार में प्रथम स्पन्द, बिन्दु है। यही नाभि है। श्वेतकमल सृष्टि है। लाल सूर्य मण्डल, साकार विश्व का आरम्भ विमर्श है। उसके भीतर योनि-चक्र व त्रिकोण है।

जो त्रिशक्ति, त्रिगुण त्रय इत्यादि का प्रतीक है। काम और रति क्लीं बीजात्मक इच्छा-शक्ति है। उनके ऊपर सृष्टि के महारम्भ स्वरूप महाशक्ति शिवा है। "बायाँ पैर आगे बढ़ा है, दिगम्बरी है, जिनके केश-समूह खुले हुए हैं। पराशक्ति अपने ही कटे हुए शिर स्थान से निकलती हुई रक्त धारा पी रही है। प्रातः कालीन उगते हुए सूर्य की तरह जिनकी प्रभा है। तीन नेत्र शोभा पा रहे हैं। साकार विग्रह के हस्त पादादि को देख कर लोगों के मन में जो भ्रम और मोह उत्पन्न होता है शिर के रूप में उसके ज्ञान वज्र द्वारा उच्छेद हुआ है। स्थिति-शक्ति का दिक् ही वस्त्र है।

प्रकृति स्वतः अपना शृङ्गार है, इसलिये केश खुले हुए हैं। सृष्टि-क्रिया में साकार रूप में महाशक्ति अपना अवलम्बन आप ही है, इसलिये स्वयं अपना रक्तपान कर रही है। बाल. सूर्य की तरह प्रभा विमर्श रूप है। चन्द्र, सूर्य और अग्नि रूप तीन नेत्र इच्छा, ज्ञान, क्रिया स्वरूप हैं।

"इनके दाहिने ओर एक योगिनी है, जो योनिमुद्रा है। यह देवी की अपनी ही शक्ति है। बड़े वेग से उठती हुई अपने रक्त की धारा इसे ये पिला रही है। हड्डियाँ इस योगिनी के आभूषण हैं। इसके हाथ में चमकता हुआ खड्ग है। निष्क्रिय और सक्रिय चित्त शक्ति के दोनों पुटों के बीच बिन्दु स्थान योनिमुद्रा है। इसका स्थान भ्रूमध्य है। योगी, तांत्रिक और बौद्ध तीनों ही इसे समान रूप से मानते हैं। जिनको ध्यानावस्था से भी इसका बोध होता है। इसके दो स्थूल रूप हो सकते हैं ?

१. [०] । २ ० । दो पुटों के मिलने से वृत्त बन जाता है। यह बिन्दु-वृत्त इसका दूसरा रूप है। इसका कल्पित रूप वर्णिनी शक्ति है।

यह मोक्षदा अर्न्तमुखवृत्ति है।

महाशक्ति अपनी ही शक्ति से अपने रूपान्तर को अनुप्राणित रखती है, यही अपना रक्त पिलाना है। इसके आभूषण अस्थि के हैं। अस्थि प्राणियों के शरीर का अवलम्ब है। सभी रूपों को शक्ति प्राण रूप से वर्तमान रह कर स्थिर रखती है, यही इसकी अस्थि-भूषा है। उग्रता अर्थात् भयङ्करता खड्ग ज्ञान है। रक्तवर्ण रक्तकेश और रक्त नेत्र रजोगुण के बोधक हैं। यह त्रिगुणात्मक माया का रजोगुण रूप है।

इनके दाहिनी ओर, अपनी ही मूर्ति एक डाकिनी है, जिसका नाम भोगिनी है। यह देवी के हृदय के अत्यन्त निकट है, अपने ही सद्यः छिन्न कण्ठ से निकलती हुई रक्त धारा से उसे पुष्ट कर रही है, भोगिनी दिगम्बरी है। इसके केश खुले हैं। यह प्रचण्ड है और प्रलयकालीन घोर घटा टोप की तरह इसका [काला] रूप है। [विकराल] दांतों के कारण इसके मुख और उदर विवर कण्ठ की ओर देखा नहीं जाता। जिह्वाका अग्रभाग लपलपा रहा है और इसकी दोनों आँखें बिजली की तरह चमकने वाली चंचल हैं।

छिन्न-मस्ता के इस प्रकार कई रूप हैं, योगिनी, मोक्षप्रद योग और भोगिनी तमोगुण मोह और अज्ञान है। भोगशक्ति का परिणाम भयंकर होता है, यही भोगिनी के विकट दांत और विद्युत्नेत्र हैं, किन्तु जो साधक शक्ति के शरणापन्न हैं उनके लिये मोक्ष और भोग दोनों अनुकूल सहायक और सुलभ हैं।

छिन्न-मस्ता का सूर्य-मण्डल काली और तारा के महाकाल और अक्षोभ्य का हृदय श्रीचक्र और त्रिपुरा का बिन्दु, विष्णु की नाभि, बुद्ध का ललाट बिन्दु और जिनके हृदय पर धर्म-चक्र और तारा त्रिगुणात्मक का साकार रूप ग्रहण करती है और यहाँ से ही त्रिपुरा विष्णु बुद्ध आदि का सृष्टि कमल प्रकट होता है।

छिन्नमस्ता की उपासना, मोक्ष, और भोग दोनों प्राप्ति की साधना है, ऐसी साधना पद्धति, का प्रारम्भ होना बौद्ध और जैन धर्म से ज्ञात होता है।

ग्रह-वर्णन

मङ्गल—शब्द का अर्थ है "मङ्गनि-हिनार्थं सर्पनि इति मंगलः" [मङ्गनेश्चले] इस ग्रह का दूसरा नाम धरासुत है। यह पृथ्वी का निकटतम पड़ोसी ग्रह है। इसकी उत्पत्ति भी पृथ्वी से ही मानी जाती है। व्यासोक्त नव ग्रह स्तोत्र में इसका वर्णन इस प्रकार है—

धरणीगर्भसम्भूतंभूलं विद्युतत्पुञ्जसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं च लोहिताङ्गं नमाम्यहम्॥

इसका वर्ण अग्नि की तरह लाल है। मंगल के सम्बन्ध में ब्रह्मवैवर्त पुराण में कथा है कि किसी समय विष्णु के सौन्दर्य से पृथ्वी लुब्ध हुई। विष्णु ने भी उसका मनोरथ जानकर उसकी इच्छा पूर्ण की, किन्तु पृथ्वी विष्णु के तेज को धारण न कर सकी, अतः उसने उस तेज का त्याग किया जिससे मंगल की उत्पत्ति हुई। वस्तुतः विष्णु सूर्य ही हैं और सूर्य से ही मंगल की उत्पत्ति हुई, इसे सभी खगोलविद् मानते हैं।

बुध—बुध का वर्ण पीला है। शंख, चक्र, गदा, पद्म युक्त है, घोड़ों से युक्त सुवर्ण रथ पर बैठे हैं। कहीं पर बुध को सिंह पर आसीन कहा गया है। पुराणों में इसकी उत्पत्ति बृहस्पति [गुरु] की पत्नी तारा से चन्द्रमा द्वारा बताई है। यह सूर्य के बहुत समीपवर्ती ग्रह है। सूर्य के साथ ही यह उदय एव अस्त होता है। बुध शब्द "बुध अवगमने" इस धातु से बनता है। "यो बुध्यते बोधयति वास बुधः" अर्थात् जो स्वय बोधस्वरूप हो और सब जीवों के बोध का कारण है इसलिए परमेश्वर का नाम "बुध" है।

बृहस्पति—गुरु अपरनामा यह ग्रह गुरु ही है सौर मण्डलीय ग्रहों में यह सबसे बड़ा है। पुराणों में बृहस्पति को देवगुरु कहा है। इन्हें पीत वर्ण का कहा गया है। इनके चार हाथ हैं। तीन हाथों में पुस्तक अक्षसूत्र एवं कमण्डलु है तथा एक हाथ वरद मुद्रा में दिखाया गया है। मत्स्यपुराण में एक स्थल पर बृहस्पति को स्वर्ण के रथ जिसमें आठ घोड़े जुते हों आसीन बताया है। इस सूर्य-मण्डल का यह सब से विशाल ग्रह है। इस ग्रह का भोग्य दिन गुरुवार है।

शुक्र—ज्योतिष के अनुसार यह शुभ ग्रह है। इसे श्वेतवर्णवाला नवाङ्कुल शरीरधारी, पद्मस्थ सूर्यमुख एवं शुक्ल वस्त्रवाला चित्रित किया है। "बृहज्जातक ग्रन्थ" के अनुसार यह अपरान्ह काल में प्रबल एवं रूप, द्रव्य-धनादि का स्वामी कहा गया है। पुराणों में इसका उपलब्ध वर्णन इस प्रकार है—यह श्वेतवर्ण वाला पताका युक्त अग्नि जैसे चमकदार जिसमें दस घोड़े जुते हैं ऐसे रथ में आसीन है। मत्स्यपुराण में इसे चतुर्भुज वर्णित किया है जिसके तीन हाथों में क्रमशः दण्ड अक्षसूत्र एवं कमण्डलु तथा चतुर्थ-हस्त वरद मुद्रा में है।

मंगल ग्रह को छोड़कर अन्य सभी ग्रहों की अपेक्षा यह पृथ्वी के निकट है। ज्योतिष में इसे जलचारी, कफ प्रकृति का कहा गया है। वस्तुतः शुक्र ग्रह सूर्य से पृथ्वी की अपेक्षा कम दूर है। अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस के तापमान से यहाँ पर जीवन की सम्भावना हो सकती है।

राहु—इसे सिंहका का पुत्र माना जाता है। इसकी आकृति भयंकर एवं वर्ण धुएँ के समान है। यह नीले सिंहासन पर बैठा हुआ खड्ग, चर्मधारी है तथा इसका एक हाथ वरद मुद्रा में है।

केतु—यह राहु का शरीर रूप माना जाता है। यह धूमवर्ण तथा दो भुजाओं वाला है। मत्स्यपुराण में इसका वाहन रथ बताया है। कहीं कहीं पर इसे गीध पर बैठा हुआ बताया है।

इस प्रकार विभिन्न ग्रहों का विभिन्न आकार बताया गया है जोकि वस्तुतः तारों की ही संग्रहात्मक आकृति ज्ञात होती है।

शनैश्चर

यह तो निर्विवाद सत्य है कि शनैश्चर जो आकाश में एक उपग्रह है इसको पुराणों में सूर्य का पुत्र माना गया है—जिसका रंग काला एवं उसके अनेक वाहन हैं, साथ ही वह यम-परिवार का भी है। इनके ध्यान के निमित्त मूर्ति की कल्पना का आधार इस प्रकार से है।

सूर्य्यस्य पत्नी संज्ञाऽभूत तनया विश्वकर्म्मणः।
मनुर्यमो यमी चैव तदपत्यानि वै मुने॥ २॥
असहन्ती तु सा भर्त्तुस्ते जश्छायां युयोज वै।
भर्तृः शुश्रूषणेऽरण्यं स्वयंच तपसे ययौ॥ ३॥
छाया संज्ञा ददौशापं यमाय कुपिता यदा।
तदान्येयमसौ बुद्धिरित्यासीद्य मसूर्य्ययोः॥ ५॥
ततो विवस्वानाख्याते तयैवरण्यसरस्थताम्।
समाविष्टच ददृशे तामश्वां तपसि स्थिताम्॥ ६॥
वाजि रूपधरः सोऽपि वतस्यां देवानथाश्विनौ।
जनयामास रेवन्तं रेतसोऽन्ते च भास्करः॥ ७॥

अर्थ—सूर्य की संज्ञा नाम पत्नि से उत्पन्न छाया जो है वही अश्व (घोड़ा) रूप धारण कर वन (अरण्य) को चली गयी। सूर्य्य की किरणों को ही सूर्य का घोड़ा कहा गया है। वहाँ दोनों का संभोग होने से अन्धकार का दूर होना, अश्वनी कुमार का जन्म होना है।

* विष्णु पुराण अंश ३—अध्याय २।

शनि—यह ग्रह अर्कसुत अथवा सूर्यपुत्र भी कहलाता है। मत्स्यपुराण में इसे नीलवर्ण वाला, चार भुजाओं वाला जिसमें शूल, बाण एवं धनुष है तथा एक हाथ वरदमुद्रा में बताया गया है। 'ग्रह यागतत्व बृहज्जातक' के अनुसार यह चतुरङ्गुल परिमाण कृष्णाम्बर, चतुर्भुज, गृध्रवाहन भल्ल बाण वरशूल धनुधारी बताया गया है इसके अधिदेवता यम है। इसी का एक नाम शनैश्चर भी है। मत्स्यपुराण में एक स्थान पर इनके वाहन का उल्लेख है जो कि लोहे का रथ है जिसमें घोड़े जुते हुए हैं।

शनि-ग्रह की आकृति अन्य ग्रहों की अपेक्षा विलक्षण है। सौर वैज्ञानिक इसे मध्य में गोल एवं त्रिवलय से युक्त बताते हैं, जोकि दूरबीन दूरवीक्षण के माध्यम से सुन्दर नजर आता है।

शनि के नौ वाहन—

[१] घोड़ा—काला रंग — १—स्थान।
[२] भैंसा—काला रंग — १२—स्थान।
[३] हाथी—यह उत्तम — ४—स्थान।
[४] मोर—उत्तम — ८—स्थान।
[५] काग— — १२—स्थान।
[६] सिंह — १२—स्थान।
[७] धर्म — [८] मेष
[९] जम्बूक — [१०] मृग

जिन पर शनि गर्धभ के साथ हो इससे तो स्थान हानि विशेष है, घोड़े पर होने से जल-स्थल में लाभ करता है। हस्ती पर होने से मान प्रतिष्ठा की प्राप्ति, मेष पर होने से मृत्यु के समान अपद आना राजस्थान में ब्राह्मण लोग शनि की कथा बड़ी रोचकता के साथ कहते और सुनते हैं। उनकी शनि-कथा में क्रमशः नौ वाहनों का उल्लेख है। जम्बूक पर होने से जंगलों का भ्रमण करना मानते हैं।

शनि कथा में शनिदेव के वाहनों या शनि के प्रभाव से मनुष्य पर अच्छे-बुरे, पुण्य-पाप कोई प्राणी खोता है, कोई धन पाता है, सन्तान का होना आदि बताया है। उसका तन गोरा और काला दोनों है।

शनि वाहन महिमा—शनिदेव का वर्ण कृष्ण (काला) है। इनकी छाया जिस व्यक्ति विशेष पर पड़ जाती हैं, उसके दिन अन्धकार मय हो जाते हैं। कहा भी जाता है कि क्या तुम पर शनिग्रह है ? शनि की दशा, साढ़े सात वर्ष, अढ़ाई वर्ष, साढ़े सात मास, साढ़े सात दिन साढ़े सात घड़ी तक छायी रहती है। इनकी पूजा में—काला उड़द, काला तिल, लोहे का पात्र, काला फूल, काला वस्त्र आदि ही काम में लाया जाता है।

शनिदेव सौराष्ट्र प्रदेश के अधिपति हैं। इनका गोत्र कश्यप है, जाति शूद्र है। शनिदेव का वर्ण जिस तरह कृष्ण है इसी तरह उनके वस्त्र भी काले हैं। इनके अधिदेवता यमराज तथा प्रजापति हैं; इनके मुख्य तीन वाहन हैं। प्रथम महिष, द्वितीय गिद्ध तथा तृतीय घोड़ा। आकाश से उत्पन्न हुए विचित्र वर्ण घोड़ों से युक्त रथ में आरूढ़ होकर मन्दगामी शनिश्चर जी धीरे-धीरे चलते हैं।

आकाशसम्भवैरश्वैः शबलैः स्यन्दनं युतम्।
तमारुह्य शनैर्याति मन्दगामी शनैश्चरः॥

क्या अहिल्या पाषाण थी ?

रामायण के पात्रों पर तो अनेक आधुनिक विद्वानों ने ग्रन्थ लिख डाले हैं, किन्तु रामायण की अनेक घटनाओं को लेकर जन-समाज में जो व्याप्त अन्ध-विश्वास और रूढ़ियां हैं, उनमें से अहिल्या के साथ इन्द्र के द्वारा हुए दुर्व्यवहार की घटना भी है, जिसका वर्णन श्रीमद् वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड सर्ग ५१ महाकवि कंब कृत कंब रामायण बाल काण्ड अध्याय ९ अहिल्या पटल, मैं है रङ्गनाथ रामायण में लिखा है कि इन्द्र ने गौतम की तपस्या भंग करने के उद्देश्य से ही अहिल्या का सतीत्व नष्ट किया था। इन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्णन होते हुए भी सभी कथानक एक से मिलते-जुलते हैं।

पउम चरियं ग्रन्थ में पर्व १३ में अहिल्या को वेगवती की पुत्री कहा गया है। इसके स्वयंवर के समय इन्द्र की उपेक्षा कर अपमानित कर आनन्द मालि को वर चुन लिया था। तद् पश्चात् नन्दमाली को वैराग्य हो जाने पर उसने दीक्षा ले ली। एक दिन इन्द्र ने नन्दमाली को ध्यानावस्था में बाँध लिया था, जिसके कारण इन्द्र युद्ध में रावण से पराजित हो गया।

एक स्थान पर गौतम-पत्नी अहिल्या के साथ इन्द्र के दुर्व्यवहार की कथा इस प्रकार है—चिरकारीता की प्रशंसा करते हुए गौतम के पुत्र चिरकारी का उदाहरण दिया गया है। गौतम ने अपनी स्त्री के व्यभिचार से क्रुद्ध होकर अपने पुत्र चिरकारी को अहिल्या का वध करने की आज्ञा दी। आज्ञा देकर वह वन को चले गए। चिरकारी इस विकट आज्ञा को पाकर विचार करने लगा जिससे अहिल्या का वध न हो सका और अधिक समय व्यतीत हो गया। इधर गौतम द्वारा शान्ति चित्त से विचार करने पर खेद होने लगा। उन्होंने कहा, इन्द्र ब्राह्मण के वेश में मेरे आश्रम में आये थे और मैंने उनका आतिथ्य सत्कार किया था। बाद में धोखे से यह घटना हो गयी। उस में उस बिचारी अहिल्या का कोई अपराध नहीं है। इस प्रकार गौतम पुनः अपने आश्रम पर वापस आए और उन्होंने अहिल्या को ग्रहण कर लिया। पद्म पुराण सृष्टि खड अ० ११ में अहिल्या पूर्वकाल में सृष्टि निर्माता ब्रह्मा की मानसिक कन्या है, जिसे ब्रह्मा ने लोकपाल देवताओं के सम्मुख महात्मा गौतम को दे दिया था।

बाद में एक दिन महर्षि गौतम पुष्कर में स्नान करने चले गए। इधर देवराज इन्द्र बहुत दिनों से अहिल्या पर आसक्त था और उसे पाने की कामना करता रहा। वह अवसर पाकर गौतम का वेश धारण कर गौतम के आश्रम में आकर अहिल्या से मैथुन करने लगा। इधर अचानक गौतम भी उसी समय आ गए। गौतम को देख इन्द्र बिल्ली बन गया। गौतम ने पूछा तुम कौन हो जो इस प्रकार बिल्ली बनकर बैठे हो ? इन्द्र भय के मारे काँपने लगा। वह हाथ जोड़ कर सामने खड़ा हो गया और उसने अपराध के लिए क्षमा मांगी। गौतम ने क्रोधित होकर इन्द्र को शाप दिया कि जा तेरा लिंग गिर जाय और तेरे शरीर में सहस्र भग हो जायें। साथ ही उन्होंने अहिल्या को भी इस पाप कर्म के लिए शाप दिया कि तेरे शरीर में हड्डी और चर्म शेष रह जाय। इस शाप से अहिल्या का मांस गल गया। नाक गिर गया। गौतम ने कहा

तू यहीं पाषाणवत चिरकाल तक रह और तप कर। अहिल्या इस शाप से दुःखी होकर मुनि से उद्धार की प्रार्थना करने लगी। मुनि ने उससे कहा कि तुम यहीं रहो, जब श्रीरामचन्द्र यहाँ आवेंगे तब उनके द्वारा तेरा उद्धार होगा।

जब श्रीरामचन्द्र जी का वहाँ आगमन हुआ तो उन्होंने अहिल्या का उद्धार किया। उनके कहने पर मुनि गौतम ने पुनः उसे ग्रहण कर द्युलोक में चले गए जो आज भी द्युलोक में स्थित हैं। इसी प्रकार श्रीराम चरित मानस में भी गौतम के शाप से अहिल्या का पाषाण होना और श्रीराम के द्वारा अहिल्या का उद्धार होने की कथा है।

अहिल्या यदि पृथ्वी की निवासी साधारण मनुष्य होती तो उसका आकाश लोक में जाना और आज तक वहाँ सम्भव न रहना होता। इससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि अहिल्या और गौतम मृत्यु लोक के निवासी नहीं हैं। ये आकाशीय पदार्थ हैं। वास्तव में ऐसे पौराणिक उपाख्यान गूढ़ रहस्यों मय ज्ञानों में पूर्ण शिक्षा और लोक हित की दृष्टि से वर्णित है।

अब प्रश्न है यह अहिल्या और गौतम तथा इन्द्र कौन है और वह पाषाण कैसे हुई? इसका समाधान संस्कृत वाङ्मय से होता है। अहल्या कस्मात् अहर्दिनं लीयत अस्याम अर्थात अहल्या वह है जिसमें दिन लीन हो जाता है। यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि अहिल्या रात्रि का नाम है। इसी प्रकार गौतम का अर्थ भी गो=पृथ्वी से प्रादुर्भूत होने वाली किरणें हैं। 'अहिल्या' शब्द का अर्थ है अह्लायस्यते अहो यमपति वासा अहल्या अर्थात् जो रात्रि के द्वारा समाप्त किया जाय अथवा जिसको दिन समाप्त करे, वह अहल्या है। गौतम चन्द्रमा का नाम है जो रात्रि का पति है, जिसे निशापति भी कहते हैं, अर्थात् गौतम (चन्द्रमा) की पत्नी रात्रि अहिल्या है। रात्रि अहिल्या का पति चन्द्रमा है, दिन का पति दिनकर सूर्य ही इन्द्र है जो पर पुरुष है।

प्रातः जब सूर्य उदय होता है तब परपुरुष रूप सूर्य के संसर्ग से रात्रि (चन्द्रमा) की स्त्री लज्जा वश मुख छिपाकर अदृश्य हो जाती है और चन्द्रमा (गौतम) दिन में मलीन हो जाता है अर्थात तेज हीन हो तप करने लगता है और जब सूर्य अस्त हो जाता है तब पुनः अपनी पत्नी से मिलता है। सूर्य को सहस्राक्ष भी कहते हैं। उससे इन्द्र के सहस्र भग को ही सहस्र भग-सहस्राक्ष होने का वर्णन है।

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेवच।
अर्यं माश्चैव धातश्चत्वष्टा पूषा तथैवच।
विवस्वान: सविता चैव मित्रो वरुण एवच।
अंशो भगश्च पितिजा आदित्य द्वादशा स्मृता।

उपरोक्त दोनों श्लोक सूर्य के पर्याय शब्द हैं अर्थात सूर्य के अनेक नामों में ये तीन नाम इन्द्र, शक्र,पूर्ण भी हैं। प्रश्न-इन्द्र (सूर्य) अहल्या का पति कैसे होगा जिसका रहस्य है आदित्यों

अत्र जारो उच्यते रात्रेः जारयिता' इसका विद्वानों ने यही अर्थ किया है कि सूर्य (इन्द्र) रात्रि का जार इस लिए कहा गया है कि सूर्य रात्रि की आयु को नष्ट करता है। गौतम और इन्द्र यही पुरुष हैं और सूर्य के पर्याय शब्द हैं।

अहिल्या का शिला होना।

गौतम द्वारा अहिल्या को शिला होने का शाप जिसका आशय है कि सूर्यास्त के सन्दर्भमय जगत की स्थिति पाषाण जैसी होना है। सूर्य ही विष्णु है। श्रीराम विष्णु का अवतार है यहाँ सूर्य किरणों से अन्धकार की समाप्ति होना ही श्रीराम के स्पर्श से अहिल्या का उद्धार होना प्रतीक रूप है।

---

* श्री कुमारिल भट्ट (तन्त्र वारतिक) पुराण परिशीलन—पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी

गंगा

सित–मकर निषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां ।
करधृत-जलकलशां सोत्पलामत्य भिष्टाम् ।
विधि-हरि-हरजुष्टां सेन्दुकोटीरघृष्टां ।
कलित-सित-दुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ।

स्वर्गलोक से ब्रह्माण्ड को तोड़ कर आती हुई भगवान् शंकर की जटालटों से गिरती हुई गंगा हिमालय के ऊँचे-नीचे पाषाण खण्डों से अटखेलियाँ करती नाचती गाती हुई भूतल के प्राणियों को अपने निर्मल सुशीतल जल का पान कराकर आनन्दित करने के लिए भूतल पर पाप रूपी प्रबल सेना को अपने वाहन रूप मकर (घड़ियाल) के द्वारा त्रास देती हुई महा-सागर में विलीन हो जाती हैं।

गंगा के अनेक रूपों का वर्णन भारतीय मनीषियों ने अपने साहित्य-ग्रन्थों में किया है। पुराणोक्त जल रूपा गंगा का वर्णन अनेक प्रकार की कथाओं में हमें पढ़ने को मिलता है। भगवान् विष्णु के चरणों से गंगा का निकलना, ब्रह्मा के कमण्डल में प्रवेश करना, गोमुख का बड़ा ही रहस्यमय और रोचक वर्णन है और जह्नु-तन्या, सुरनिम्नना, भागीरथी, त्रिपथगा, त्रिस्त्रोता, भीष्मसू आदि अनेक नामों का उल्लेख होना, यह केवल कोरी कल्पना मात्र है अथवा इनमें कुछ रहस्य भी है, यही वर्णन का विषय है।

यह तो स्पष्ट ही है कि पुराणोक्त जलस्वरूपा गंगा जी के ऐतिहासिकता का मूल तथ्य यह है कि राजा भागीरथी अपने अथक परिश्रम के द्वारा गंगा की धारा को भारत की ओर न मोड़ लाते तो आज यह पुण्य सलिला चीन देश में होती और भारत के उत्तराखण्ड से लेकर बंगाल की सीमा और गंगासागर तक का भाग इतना हरा-भरा न होता। आज हम अध्या-त्मिक और भौतिक सुखों से भी वंचित रह जाते।

पुराणों में गंगा का वर्णन तीन नामों से किया गया है (१) आकाश गंगा (२) पाताल गंगा (३) मर्त्यलोक गंगा ? जल रूप में बहने वाली गंगा जिसे भागीरथी द्वारा मर्त्यलोक में लाने की कथा कही गयी है। गंगा के उद्भव और उनकी वैज्ञानिकता पर विचार करने पर सहज ही ज्ञात हो जाता है कि इन तीनों रूपों के साधकों के मूल में, उनका ध्यान और लक्ष्य एक ही है, जिनके विभिन्न रूप, गुणों का वर्णन भारतीय विभिन्न पुराणों में मिलता है और इसी आधार पर शिल्पकारों एवं चित्रकारों ने भी अपनी-अपनी मूक भाषा में उनको प्रकट करने का प्रयत्न किया है। योग साधकों की दृष्टि में जल का देवता वरुण है। वरुण चक्र में "वँ" कार बीज वरुण 'ह'। दलों के ऊपर 'ब' से 'ल' तक नाम तत्व जल है। जिसका तत्व बीज 'वँ' इस बीज का वाहन मकर है। गुण रस जिसका देवता प्रवाह का लुप्त हो जाना सिद्ध किया गया है। विष्णु पुराण में आकाश गंगा का वर्णन इस प्रकार से आया है।

सरित्स मुद्रभोमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः ।
चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सविता मुने ॥ १२ ॥
आकाशगंगासलिलं तथादाय गभमस्यिमान् ।
अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षिपयि रश्मिभिः ॥ १३ ॥
तस्य संस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तम ।
न याति नरकं मर्त्योदिव्यं स्नानं हितत्स्मृतम् ॥ १४ ॥

(विष्णु पुराण अ० ९)

भावार्थ—सूर्यदेव नदी, समुद्र, पृथ्वी तथा प्राणियों से उत्पन्न इन चार प्रकार के जलों का आकर्षण करते हैं, वे अंशुमाली आकाश गङ्गा के जल को ग्रहण करके उसे बिना मेघादि के अपनी किरणों से ही तुरंत पृथ्वी पर बरसा देते हैं।

जिसके स्पर्श मात्र से पाप-पङ्क के धुल जाने से मनुष्य नरक में नहीं जाता। वह दिव्य स्नान कहलाता है। बिना मेघों के ही जो जल बरसता है उसे ही सूर्य की किरणों द्वारा बरसाया हुआ आकाश गंगा कहा गया है।

आकाश गंगाः—वेदों में भी गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों के नाम का वर्णन है, किन्तु ये नदियाँ आकाशीय नदियों के नाम से वर्णित हैं। जिनके नामों के अनुसार भूतल के नदियों के नाम रखे गये हैं। ठीक उन्हीं शब्दों में पौराणिक कथाओं में उनकी कल्पना कर ध्यान के लिए वर्णन किया गया है। यहाँ उसका अधिक उल्लेख करना आवश्यक न जानकर केवल संक्षेप में उदाहरण के लिए उल्लेख किया जा रहा है। जिससे गंगा के जलतत्व एवं उनके गोमुख से निकलने का रहस्य स्पष्ट हो जायगा। ऋग्वेद में १०।१०८।४ में शर्मा नाम की कुतिया का वर्णन इस प्रकार है कि एक बार देवराज इन्द्र ने शर्मा की गायों को ढूढ़ने के लिए भेजा किन्तु बीच में पणियों ने उसे लात मारी जिससे उसने दूध उगल दिया। यह शर्मा वही 'श्वान तारा' है जो आकाश में स्थित है। उसके द्वारा उगला हुआ दूध आकाशगंगा है। इस प्रसंग पर 'वैदिक सम्पत्ति' ग्रन्थ के लेखक विद्वान पंडित रघुराज शर्मा ने वर्षाकाश का अलंकारिक वर्णन कहा है। इसे वे माया दृष्टि से देखते हैं। मुनि माया के स्तर में बहकर, मोहसागर में डूबकर भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिए मोह स्रोत में पड़कर जन्हुमुनि की यज्ञसामग्री बही जाती थी। अर्थात् यज्ञकार्य में विघ्नबाधा बनकर बाह्य ध्यान उन्हें पृथक कर देता था। इसलिए उन्होंने सम्पूर्ण गंगोदक पानकर लिया अर्थात् 'यज्ञावशेष करके सनातन ब्रह्म में लीन हो गए। इस प्रकार क्रिया की परावस्था में जाकर स्थिति सम्पन्न हुई। तब मन के लाभ के कारण सृष्टि का लय हो गया, गंगा का देवता विष्णु है।

'जाह्नवी' नाम—योगियों का कथन है कि गंगा का दूसरा नाम 'जाह्नवी' है अर्थात् 'ज्ञानगंगा' के रूप में यह संसार स्रोत की अधिष्ठात्री देवी माया स्वरूप भी है। जो मनुष्य ज्ञानस्वरूप कूटस्थ ब्रह्म पर लक्ष्य रख कर संसार के कार्य का सम्पादन करते हैं, वे प्राणी ज्ञान भ्रष्ट नहीं होते। उनके लिए यह ज्ञानगंगा है। इसका वर्णन करते हुए प्रमाण में बड़े तर्कपूर्ण ढंग से लिखा है। शर्मा को इन्द्र की दूती कहा गया है, और पणयः (पणियों) अर्थात् बादलों

'वैदिकसम्पत्ति' में लिखा है कि 'इन्द्र ने 'वृत्र' को वज्र से मार कर सातों सिन्धुओं को मुक्त किया*। जिससे स्पष्ट होता है कि सूर्य बादलों को छिन्न भिन्न कर किरणों को मुक्त कर देता है (१) गंगा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में गंगातत्व की व्याख्या करते हुए भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी जी ने भी अपने ग्रन्थ 'वैदिक विज्ञान और भारती संस्कृति' में इसकी प्रमाणिकता पर बल दिया है।

ॐ या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या:,
आन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्या:।
हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः,
शिवाः शंस्योनाः सुहवा भवन्तु॥

अर्थात् जो दिव्य जल अपने सारभूत रस से सम्मानित है और जो अन्तरिक्ष का और भूमि का जल है "हिरण्य" सुवर्ण के समान वर्णवाला यज्ञ के उपयुक्त वह जल हमारे लिए कल्याण कारक तथा सुखदायक यज्ञ का सम्यक प्रकार से साधन हो।

इसमें तीन प्रकार के जल का वर्णन है। प्रथम दिव्य अर्थात् द्युलोक(सूर्य लोक दूसरा अन्तरिक्ष का तीसरा भूमि का इसमें भी तीन प्रकार के भेद माने जाते हैं। १—नदी में बहने वाली। २—गड्ढा खोदने से निकलने वाला। ३—अपने आप भूमि से प्राप्त होने वाला।

आगे आपने भी आकाशी गंगा का वर्णन करते हुए तर्क दिया है कि दिव्य और अन्तरिक्ष जल कौन से हैं? अर्थात् 'अप्' जल का हो नाम है, किन्तु जल के स्थूल रूप से तात्पर्य न होते हुए भी रस, रूप, द्रव्य पदार्थ वहाँ 'अप्' या 'अम्भः दिव्य जल है, किन्तु एक दूसरे से भिन्न हो ही जाता है। फिर भी कहा है कि वह ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। "सर्वमापोमयंजगत्" जैसा वेदों में वर्णित है कि "चन्द्रमा 'अप्' के अन्दर होकर दौड़ता है। सूर्य के समीप और सूर्य के साथ 'अप्' वर्तमान है। सूर्य और अग्नि 'अप्' में ही पैदा होते हैं इत्यादि।"

सूर्य जब उदयाचल पर आते हैं तो उनकी किरणों के संघर्ष से वह 'अप्' अपना स्थान छोड़कर दूर हट जाता है। रस रूप होने के कारण तेज के साथ इस 'अप्' का स्वभाविक विरोध है। अर्थात् जहाँ तक सूर्य की किरणें प्रखरता से फैली हुई हैं वहाँ से उतने प्रदेश का 'अप्' दूर हटाती जाती हैं। ध्रुवप्रदेश में जहाँ सूर्य की किरणें अति मन्द रहती हैं वहाँ वह 'अप्' के अधिक एकत्रित हो जाने के कारण वहाँ वह घनीभूत होकर स्थूल जल के रूप में आ जाता है और अपने गुरुत्व के कारण वायु में नहीं ठहर सकता। इसलिए सुमेरु के शिखर पर गंगा के जल का गिरना वर्णित है; उसे ही कहते हैं 'गंगा' जैसा कि पुराणों में ध्रुव के ऊपर से सुमेरु के ऊपर गंगा के गिरने का प्रमाण मिलता है। यथा- ध्रुव स्थान हमारे इस ब्रह्माण्ड की परिधि माना गया है।

हमारे ब्रह्माण्ड की परिधि से दूसरे ब्रह्माण्डों की परिधि मिल जाती है। अर्थात् ऐसा भी आकाश का प्रदेश है, जहाँ पर एक सूर्य का प्रकाश समाप्त होकर दूसरे सूर्यों का प्रकाश आरम्भ हो जाता है। यही कारण है कि दूसरे ब्रह्माण्डों का 'अप्' तत्व भी जोकि दूसरे सूर्य की किरणों के संघर्ष से परिधि तक घनीभूत हो गया हमारे ब्रह्माण्ड के 'अप्' के साथ मिलकर वह गंगा रूप में आ जाता है। अतएव पुराणों में गंगा नदी को 'अपराब्रह्माण्ड' की जलधारा भी कहते हैं।

* 'वैदिक सम्पत्ति' पृ० सं० १३३ तथा ऋग्वेद अ० १।३२।१२

इसे सप्तर्षि प्रदेश का विष्णु भी कहा गया है। अतः उस प्रदेश में स्थित 'गंगा' को 'विष्णुपदी' भी कहते हैं और अष्टमूर्ति भगवान् शंकर का केशकलाप यह आकाश है जिससे व्योम केश नाम शंकर का है। इस आकाश में रहने के कारण यह 'हरजटा-जूटवासिनी, जटा शंकरी' कही गयी है।

गंगा-वाहन मकर है, जल बीजतत्व "वं" बीज का वाहन जो एक आकाशी नक्षत्र भी है, जो आकाशी गंगा के समीप आ जाने से उसका वाहन कहा जाता है। यह रहा गंगा का वाहन मकर होने का रहस्य और साधक के ध्यान मूर्ति की कल्पना।

ज्योतिष के विद्वानों के मत से मकर एक राशि है और जब सूर्य मकर राशि पर होता है तो उस समय सूर्य की किरणें जिन्हें गंगा भी माना गया है वह मकर राशि के ऊपर होकर फैलने से मकर वाहिनी गंगा कहलाती हैं, प्रत्यक्ष रूप से जल में मकर की प्रधानता भी है—जैसे वन में सिंह वैसे जल में मकर। गंगा में तो इनकी और भी अधिकता है। जलतत्व बहने वाला होने के कारण "वायु" मकर के समान डूबता चलता है।

गंगा को विष्णु की पत्नी के रूपमें भी माना जाता है। अमर कोषकार ने गंगा के विभिन्न नामों में विष्णुपदी भी एक नाम दिया है।

गङ्गा विष्णु पदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा।
भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्रोता भीष्मसूरपि॥

(अमरकोष १।३१)

यहाँ पर विष्णु वस्तुतः सूर्य का ही नाम है और सूर्य की किरणें ही विष्णु के चरण हैं गंगा का निम्न नाम है अर्थात् तीन स्रोतों में नीचे की ओर बहने वाली गंगा मधुर रस को देने वाली नदी है। रस-रूपा होने से नदी रूप अलंकार है। वेदों में इला शब्द सरस्वती के विशेषण के रूप में आया है, जैसे यह आकाश गंगा का भी नाम है और भूतल पर जलस्वरूपा बहने वाली गंगा नदी का भी नाम है।

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे।
शङ्कर मौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पद कमले॥ १॥
भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः।
नाहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम्॥ २॥
हरिपदपाद्य तरङ्गिणि गङ्गे हिमविधु मुक्ता धवलतरङ्गे।
दूरीकुरु मम दुष्कृति भारं कुरु कृपया भवसागर पारम्॥ ३॥
तव जलममलं येन निपीतं परमपदम खलु तेन गृहीतम्।
मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्तः किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः॥ ४॥
पतितोद्धारिणि जह्नवी गङ्गे खण्डितगिरिवर मण्डित भङ्गे।
भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये पतितनिवारिणि त्रिभुवन धन्ये॥ ५॥

भावार्थ—हे देवि गङ्गे! तुम देवगण की ईश्वरी हो, हे भगवति! तुम त्रिभुवन को तारने वाली, विमल और तरल तरङ्गमयी तथा शंकर के मस्तक पर विहार करने वाली हो। हे मातः! तुम्हारे चरण कमलों में मेरी मति लगी रहे ॥ १ ॥

हे भागीरथि! तुम सब प्राणियों को सुख देती हो, हे मातः! वेद-शास्त्र में तुम्हारे जल का महात्म्य वर्णित है, मैं तुम्हारी महिमा कुछ नहीं जानता, हे दयामयि, मुझ अज्ञानी की रक्षा करो ॥ २ ॥

हे गङ्गे! तुम श्रीहरि के चरणों की चरणोदकमयी नदी हो, हे देवि, तुम्हारी तरङ्गे हिम चन्द्रमा और मोती की भाँति-श्वेत हैं, तुम मेरे पापों का भार दूर कर दो और कृपा करके मुझे भवसागर के पार उतारो ॥ ३ ॥

हे देवि, जिसने तुम्हारा जल पी लिया, अवश्य ही उसने परमपद पा लिया। हे मातः गङ्गे! जो तुम्हारी भक्ति करता है, उसको यमराज नहीं देख सकता। (अर्थात् तुम्हारे भक्तगण यमपुरी में न जाकर वैकुण्ठ में जाते हैं।) ॥ ४ ॥

हे पतितजनों का उद्धार करने वाली जह्नु-कुमारी-गङ्गे! तुम्हारी तरङ्गे गिरिराज हिमालय को खण्डित करके बहती हुई सुशोभित होती हैं, तुम भीष्म की जननी जह्नु मुनि की कन्या हो, पतितपावनी होने के कारण तुम त्रिभुवन में धन्य हो ॥ ५ ॥

यमुना–वाहन कूर्म

वामे तु यमुना कार्या, कूर्मं संस्था सचामर।
नीलोत्पन्न-करा सौम्या, नील-नीरज-सन्निभा॥

इमं में गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रि।
स्तोमं संचता परूष्ण्या असिक्न्या मरुंवृद्धे॥
वितस्तथांजीकंये श्रुणुत्वा सषोमया॥

यमुना के कई नाम हैं, किन्तु सब में यमुना और कलिन्दी प्रमुख हैं। यहाँ गंगा की भाँति यमुना भी अन्तरिक्ष में हैं, जो एक नक्षत्र है। कभी-कभी यह सूर्य के समीप भी रहती है और भूतल की जल स्वरूपा यमुना नदी को काल्पनिक आधार और उसकी आध्यात्मिकता का आधार मूल सूर्य है। जिसे पुराणकारों ने सुन्दर रूपक अलंकारों में वर्णन सजाकर किया है।

यम की बहिन :—'यम' कौन है ? और यमुना कैसे उनकी बहिन हो गई ? इस सम्बन्ध में ऋषि-महर्षियों द्वारा वर्णित दृष्टान्त ऐसा मिलता है कि यम और यमी ये दोनों सूर्य की सन्तानें हैं। 'अमरकोश' में "कालो दण्डधरः श्वाद देवो वैवस्तोऽन्तकः अनेक विद्वानों का निर्णय है कि यह दोनों (समय) काल का नाम है। एक (यम) दिन का और दूसरा (यमी) रात्रि का बोधक है तथा सूर्य की किरणों का भी नाम यम है, जो अनेक कीटाणुओं का भक्षकर जीवमात्र की सुरक्षा करता है। अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये तीनों वेद आदित्य कहे जाते हैं। इनके समस्त कार्यों का जो ज्ञान है उसे ही संज्ञा कहा जाता है। उनमें जो धर्म उत्पन्न हुए हैं वही धर्मराज, अलंकार से विभूषित है। संज्ञा में परमधार रूप सच्चिदानन्द लक्षण वाला जो उपनिषद-गीत ब्रह्मरस प्रकट हुआ है, वह स्वयं यमुना जी हैं। पाठक, यहाँ ध्यान से विचार करें कि जब यमुना जी ब्रह्मरस हैं तो उनका वाहन कौन हो सकता है ? वह है स्वयं गोपाल नन्दन श्रीकृष्ण जो कूर्म के रूप में (कच्छप अवतार) यमुना का भार वाहन कर रहे हैं। अर्थात् वेद और उपनिषदों को धारण करने वाला भी स्वयं है। अब यमुना जी की गति के सम्बन्ध में देखिए क्या उल्लेख किया गया है—

दिवसे दिवसे भानुरादायाजय वत्सलः।
उदयाचलतः पुत्री नयत्यस्ताचलं भुने॥

यमुना याति ततो नित्यं गच्छन्त्यास्तेऽक्षया व्यया।
विशन्त्योघेने :सादित्यमुदयाद्रौपुनः पुनः॥

एवं भूतौ तथाकारो घटीयंत्रमिवानिशम्।
यमुनास्तोदयाद्रिभ्यां भ्रामत्यस्तेऽक्षयोदका॥

भावार्थ—"यमुना सूर्य की पुत्री है। पुत्री के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाला आदित्य अपने साथ उसे प्रतिदिन उदयाचल से अस्ताचल की ओर ले जाता है। यमुना जी भी इसी से नित्य उदयाचल में आदित्य में अपने जल-समूह के साथ प्रवेश करती हैं। अर्थात् श्री गंगा जी तो पर्वतराज हिमालय से निकलकर महासागर में मिल जाती है, जिसे गंगा सागर कहते हैं, किन्तु यमुना जी का सूर्य से ही उत्पन्न होना और किरणों द्वारा सूर्य ही में लीन हो जाना तथा घटी यन्त्रों के समान पृथ्वी और आकाश में परिभ्रमण करती हुई पूर्ण जल के साथ रहती है।"

कालिन्दी—हिमालय से गंगोत्री, यमुनोत्री दो नदियों का उद्‌भव हुआ है। गंगा सीधी हिमालय पर्वत पर से चली आयी और यमुना समीप के कालिन्द पर्वत से होती हुई आ रही है। जिससे यमुना का नाम कालिन्दी पड़ा है, जिसका यमुना में "कालिन्दी कुल लोलायः" ऐसा सुन्दर विशेषण दिया है। यहाँ है अलंकार और रूपक का प्रयोग। आदित्य स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण की प्रकृति शक्ति जल स्वरूपा यमुना संसार के संचालन में सहायक होने से पौराणिकों ने भगवत कथाओं में श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्दकन्द की चतुर्थ महारानी कहकर विशेषण किया है। यमुना और कालिन्दी के सम्बन्ध में श्रीमन्न महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य रचित पुष्टिमार्गीय वैष्णवों का प्रमुख 'षोडश ग्रन्थ' में यमुना के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है —

पद्मपुराण में यमुना का स्वरूप आध्यात्मिकता की दृष्टि से वृन्दावन में पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण प्रकृति रूपा राधा शक्ति के साथ 'रास कथाएं' हैं, तदन्तर्गत ही जल स्वरूपा कालिन्दी को अमृत वाहिनी, सुषम्ना नाड़ी तथा वृंदावन की चर्म-चक्षुओं द्वारा दर्शनीय माना गया है।

यमुना-वाहन कूर्मः—

"स यत् कुर्म्मो नाम एतद्वा रूपं कृत्वा प्रजापति, प्रजा;
असृजत यदसृजताकरोत्तद यदकरोत् तस्मात् कूर्म्मं।
कश्यपो वै कूर्म्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः,
काश्यप्य इति स यः स कूर्म्मोऽस्य स अदित्यः।"

—श० ब्रा ७।५।१।५।

अर्थात्—स यत्कूर्मो प्रजा को उत्पन्न करने से कूर्म्म तथा उसका पालन, रक्षक भार वाहन करने से वह विष्णु है। गंगा यमुना शरीरस्थ इड़ा और पिंगला नाड़ी का नाम भी है। इसमें दो मत्स्य विचरते हैं। श्वांस; परश्वांस, इन्हें जो व्यक्ति प्राणायाम द्वारा श्वांस, परश्वांसों को रोककर "कुम्भक" करते, हैं। वे ही अर्थात् मत्स्य साधक हैं।

यदि शिवजी के भक्तों ने गंगा जी की महिमा का गायन किया है तो पुष्टिमार्गी सम्प्रदायी यमुना जी की स्तुति करते हैं 'पुष्टि सम्प्रदाय' के प्रवर्त्तक श्रीमद् बल्लभाचार्य जी अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की महिमावर्णन के साथ-साथ यमुना जी का भी वर्णन किये हैं।

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा।
मुरारिपदपङ्कजस्फुरदमन्दरेणूत्कटाम् ।

तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना ।
सुरासुरपूजितस्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् ॥ १ ॥

१—"श्री यमुनाष्टक" (श्रीमद् वल्लभगीता —१)

समस्त अलौकिक सिद्धियों को देने वाली 'मुरा' दैत्य की शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के चरण कमल की तेजस्वी और जल से विशेष रेणु को धारण करने वाली, अपने तट पर स्थित नवीन वन के विकसित सुगन्धित पुष्प मिश्रित जल द्वारा सुर अर्थात् दैन्य भाव वाले व्रजभक्तों के द्वारा और असुर अर्थात् मानभाव वाले व्रजभक्तों के द्वारा अच्छी प्रकार से पूजित तथा श्रीकृष्ण चन्द्र को हृदय में धारण करने वाली श्री यमुना जी को नमस्कार है ॥ १ ॥

"कालिन्दगिरिके पतदमन्दपूरोज्ज्वला ।
विलासगमनोल्लसत्प्रकटगण्डशैलोन्नत ।
सघोष गतिदन्तुरा समधिरूढदोलोत्तमा ।
मुकुन्दरतिर्द्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता ॥ २ ॥

"श्री यमुनाष्टक" (श्रीमद् वल्लभ गीता—२)

यमुना सूर्य मण्डल में स्थित भगवान् के हृदय से इस रूप में प्रकट होकर फिर—"कालिन्द पर्वत के शिखर पर तीव्र वेग से गिरते हुए एवं उज्ज्वल विलास करते हुए सुन्दर पाषाण शिलाओं से उन्नत तथा कल-कल की ध्वनि करती हुई ऊँचे-नीचे पर्वत खण्डों से किलोल करती हुई दीखती हैं। अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र में प्रीति रखने वाली सूर्यपुत्री श्री यमुने तेरी जय हो।"

—०—

ऋग्वेद

चारों वेदों में ऋग्वेद का प्रमुख स्थान है। इसका शरीर देवतुल्य और वस्त्र पीताम्बर का उत्तरीय है। इनकी दो भुजाएं हैं। दाहिनी भुजा में अक्षमाला है। बायीं भुजा जाँघ पर है, किन्तु ग्रीवा से ऊपर के भाग या मुख की आकृति रासभ की है। ऐसा क्यों है ? इस सन्दर्भ में खोज करने पर निम्न श्लोक आधार स्वरूप प्राप्त हुआ है :—

"ऋग्वेदः श्वेतवर्णः स्याद्द्विभुजो रासभाननः।
अक्षमालाधरः सौम्यः प्रीतो व्याख्यांपध्नाद्यतः ॥"

ऐसा प्रमाणित होता है कि यहां रासभ ऋग्वेद के शब्दों में तीव्र ध्वनि में उच्चारण के लिए प्रतीक है। रासभ नाम एक पशु का भी है और स्वर का भी। अतः यहाँ प्राचीन कालीन संकेत लिपि के अनुसार यह प्रतीक रूप में हैं। जैसा कि संस्कृत के शब्द कोश में चर्चा आती है, रासते शब्दायते इति रासभः; (१) जो तीव्र ध्वनि करता है ऐसा एक पशु विशेष (गर्दभ) के स्वर का सभा सप्तम स्वर तक है, यह एक तीव्र स्वर है। इसमें स्वर अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। ऐसे उच्च-स्वर में गाने वाला भी रासभ कहलाता है। यह गर्दभ का भी एक नाम है।

अतः जिस प्रकार सामवेद का अश्वभाव गान-विद्या में संबन्धित एक स्वर विशेष का प्रतीक है, उसी प्रकार ऋग्वेद का रासभ भाव होना भी है। उसके उच्च-स्वर के उच्चारण के लिए सप्तस्वर का प्रतीक रासभ है।

सामवेद

नीलोत्पलदलाभासः सामवेदो हयाननः।
अक्षमालान्वितो दक्ष बामे कुम्भधरः स्मृतः ॥१॥

यज्ञ की अश्व के रूप में कल्पना—अश्व को वेद का एक यज्ञ कहा गया है। बृहदा-रण्यकोपनिषद् के प्रथम अध्याय प्रथम ब्राह्मण में भी यज्ञ की अश्व के रूप में कल्पना की गयी है। उषा (ब्रह्ममुहूर्त) यज्ञ सम्बन्धी अश्व का सिर है, सूर्य नेत्र है, वायु प्राण है, वैश्वायन अग्नि खुला हुआ मुख और संवत्सर यज्ञिक अश्व की आत्मा है। द्युलोक उसकी पीठ है, अन्तरिक्ष उदर है। पृथ्वी पैर रखने का स्थान है, दिशाएँ पार्श्वभाग हैं, अवान्तर दिशाएँ पसलियाँ हैं। ऋतुएँ अंग हैं। मास और अर्द्धमास पर्व (सान्ध स्थान) हैं। दिन और रात प्रतिष्ठा (पाद) हैं। नक्षत्र अस्थियाँ हैं। आकाश स्थित (मेघ) मांस है। बालू अवध्य (उदरस्थित) अर्द्धजीर्ण अन्न है। नदियाँ गुदा-नाड़ियाँ हैं। पर्वत यकृत और हृदयगत मांसखण्ड हैं। ओषधि और वनस्पतियाँ रोम हैं। उदय होता हुआ सूर्य नाभि से ऊपर का भाग और अस्त होता हुआ सूर्य कटि से नीचे का भाग है। उसका जमुहाई लेना बिजली का चमकना कहा गया है। और शरीर का हिलना मेघ का गर्जन है। मेघ का वर्षण ही उसका मूत्र त्याग करना है। यहाँ हिनहिनाना ही उसकी वाणी कहा है।

अश्व के समाने महिमा रूप से दिन प्रकट हुआ। उसकी पूर्वीसमुद्र योनि है। रात्रि इसके पीछे महिमा रूप से प्रकट हुई। उसकी अपर (पश्चिम) समुद्र योनि है। ये ही दोनों इस अश्व के आगे-पीछे महिमा सज्ञक ग्रह हुए। इसने हय होकर देवताओं को; बाजी होकर गन्धर्वों को, अर्वा होकर असुरों को और अश्व होकर मनुष्यों को वहन किया है।

इसको ब्रह्मज्ञान तथा यज्ञ नाम से भी कहा गया है, और यज्ञकुण्ड की आकृति अश्वरूप में कल्पना है। जिसमें विश्वनियन्ता ब्रह्म के विशाल रूप का दर्शन है। वेदों में सामवेद ब्रह्मज्ञान का ग्रन्थ नहीं, यह संगीत शास्त्र, गान-विद्या का जनक है। सामगान के मन्त्रों की ध्वनि और लय के अनेक भेद हैं जिन्हें चार भाग में बाँटा गया है। उनके नाम हैं, ग्राम गेय, गान, आरण्यक गान, ऊहगान, और ऊर्ध्वगान। सामवेद के गान की प्राचीन रीति और कौन स्वर था इसका प्रमाण सही नहीं मिलता, तब भी यह प्रचलित था ये स्वर थे।

(१) मध्यम (२) गान्धार (३) ऋषभ (४) सडज (५) धैवत (धैवलो) (६) निषाद (७) पञ्चम। इन स्वरों के अतिरिक्त सामगान में पाँच समविकार सम्मिलित होते हैं जिनके नाम हैं अग्न आ आहि वितये गृणानों हवा दातये नि हेता सत्सि बहिषि। इस प्रकार इनके भेद होते हुए भी प्राचीन काल से अब तक के वैदिकों ने अनेक कठिनाइयों के होते हुए वेदों के स्वर-पाठ की रक्षा की है। सामवेद को उपवेद और गन्धर्व वेद भी कहा गया है। गन्धर्व के मुख का प्रतीक अश्व है तथा प्रधान ध्वनि सडज है, इसलिए सामवेद के उच्चारण के लिए प्रतीक अश्व मुख है। आज वर्तमान काल में भी उसके सात स्वर ज्यों के त्यों हैं। स्वरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शब्द कल्पद्रुम के पांचवें काण्ड में (पृष्ठ ४७५) दो शास्त्रीय उद्धरण दिये गये हैं जिनसे सात पशु-पक्षियों से सप्त-स्वर के उद्भव की बात है।
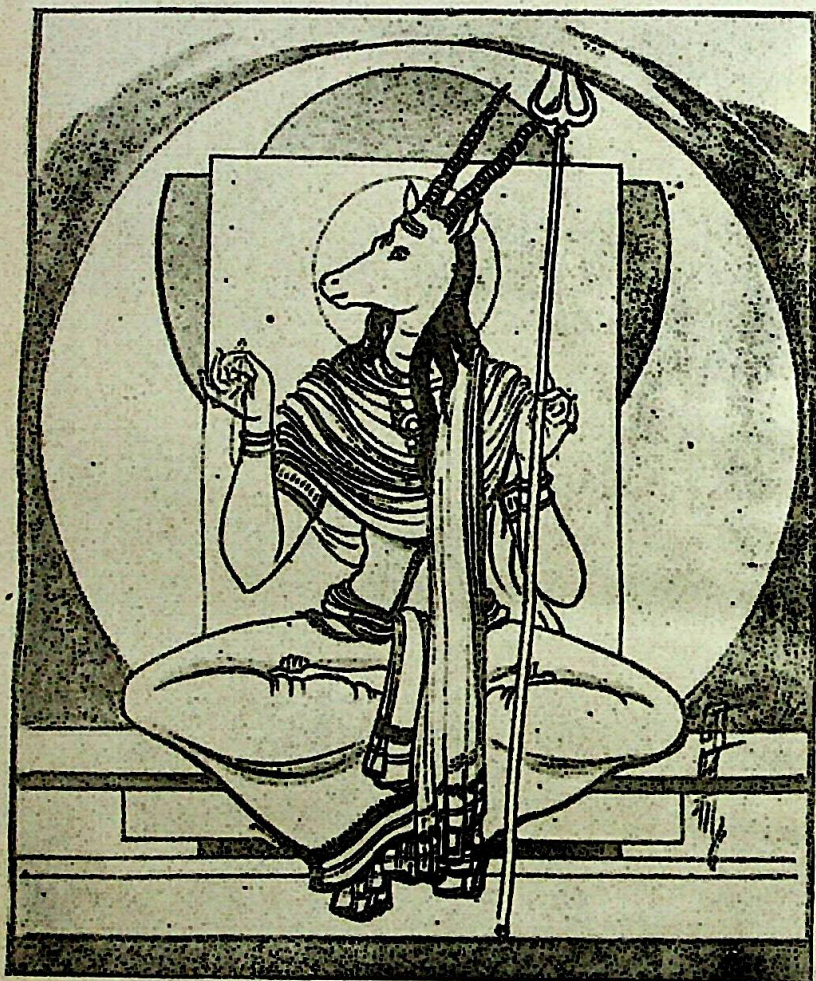
नाट्य शास्त्र
साङ्ग वेदविद्यालय रजत जयन्ती ग्रन्थ से साभार

नाट्य-शास्त्र का प्रतीक 'हिरण

नाट्य कला के कलाकार के लिए सौन्दर्य, गांभीर्य, चञ्चलता, स्फूर्ति—ये आवश्यक गुण हैं। नाटक के पात्रों के अङ्ग ऐसे हलके हों जो शीघ्रता से मोड़े जा सकें। नेत्र सुन्दर तथा हर क्षण सतर्क रहने वाले हों। ये सभी गुण-धर्म मृग पशु (हिरण) में पाये जाते हैं। मृग के नेत्र तो अत्यन्त मनमोहक होते ही हैं और उनकी कायिक भाव भंगिमा भी बहुत सुन्दर होती है। यही कारण है कि हिरण को नाट्य शास्त्र के देवता का प्रतीक माना गया है।

"नृत्तशास्त्रमिदं रम्यं मृगवक्त्रं च त्रिलोचनम्।
अक्ष सूत्रं त्रिशूलञ्चबिभ्राणं च त्रिलोचनम्॥"

नाट्य शास्त्र के देवता का सारा शरीर मानवीय है तथा दुबला-पतला (इकहरा) शरीर अँगिया या पीताम्बर और उत्तरीय दो भुजाएँ हैं। जिनके एक में अक्षसूत्र (रुद्राक्ष) की माला और दूसरे में त्रिशूल है। ग्रीवा से लेकर मस्तक तक जिनका अङ्ग मृग (हिरण) पशु जैसा है।

काव्य के लिए भाषा-ज्ञान के साथ उसे ज्ञानवान् इन्द्रियजित भी होना चाहिए। जैसा कि योग साधक के लिए है। यहाँ वायु की गति का स्थान अनाहत-चक्र (द्वादशदल-पद्म की दशा का रूप है, जिसमें उठने वाले अक्षर क, ठ तक नाम तत्व वायु है और बीज का वाहन मृग है। मानव हृदय के वायु तत्व में शरीरस्थ वायु हिरन की तरह छलांग मारकर भागता है। इससे प्रतीत होता है कि नाट्यकार के लिए उसमें हिरन के समान स्फूर्ति होना आवश्यक है।

षट्-चक्रनिरूपण, 'ग्रन्थ'—"कल्याण मासिक" का शक्ति अङ्क, कुण्डलिनी और चक्र, पृष्ठ ४५२

सप्तमुखः ५ गीत मोदी ६ हरिण नर्त्तकः ७१२ इति शब्दरत्नावली शब्द-कल्पद्रुमः द्वितीयो भागः

निरुक्त शास्त्र

इन्दुबन्निर्मलं शान्तं बक वक्त्रं कृशोदरम् ।
पाश पङ्कज संयुक्तं साक्षसूत्रं सपुस्तकम् ॥

निरुक्त शास्त्र चन्द्रमा के सामान निर्मल है। उसके सारे शरीर की कल्पना मानव रूप में की गई है। उसके चार हाथ हैं। दाहिने हाथ में पाश, पङ्कज और बायें हाथ में एक साक्षसूत्र तथा पुस्तक है, परन्तु उसका मुख क्रौञ्च पक्षी के मुख जैसा है। यह बगुले की जाति का एक पक्षी है।

निरुक्त ग्रन्थ वैदिक शब्दों तथा अध्यात्म ज्ञान एवं संस्कृत के अनेक गूढ़ शब्दों के रहस्यों का ज्ञान कराने वाला कोश है। यह भ्रान्ति रूपी अज्ञान सरोवर को पार कर ब्रह्म के विराट स्वरूप का साक्षात्कार कराने वाले देवताओं के गुरु बृहस्पति जैसा है। उसी प्रकार यह ज्ञान कोश है।

क्रौञ्च पक्षी प्रतीक क्यों ? —

छान्दोग्य-पनिषद के अध्याय २ खण्ड २२ में अग्नि सम्बन्धी उद्घोष सामके, विनर्दि नाम गान का वरण करता है। वह पशुओं के लिए हितकर और अग्नि देवता सम्बन्धी उद्घोष है। प्रजापति का उद्घोष अग्निरूप सोम निरुक्त है। वायु का मृदुल और श्लक्षण सरलता से उच्चारण किये जाने योग्य है। इन्द्र का श्लक्षण और बलवान है। बृहस्पति का क्रौञ्च पक्षी है।

क्रौञ्च पक्षी का वर्णन संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर आया है। इसे कुञ्ज, क्रुञ्च तथा क्रौञ्च कहा गया है। श्लोकात्मक काव्य धारा के प्रारम्भ होने की प्रेरणा का मूल-स्रोत इसी पक्षी को माना जाता है। क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक पक्षी को व्याध द्वारा मारे जाने पर आर्त-क्रन्दन करने वाली क्रौञ्चीं को देखकर महर्षि वाल्मिकि के मुख से सहसा यह श्लोक निकल पड़ा—

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्च मिथुना देकमवधीः काममोहितम् ॥

विष्णु पुराण के अध्याय ४ अंश ३ में वेदव्यास के पाँचवे शिष्य का नाम मद्यमुनि क्रौञ्च है। यहाँ काव्यधारा की प्रेरणा देने वाला पक्षी होने से ही यह क्रौञ्च पक्षी इसका प्रतीक रूप है।

देव 'म' कार स्वरूप शिव को नमस्कार है। जो शिव के समीप पवित्र पञ्चाक्षर का पाठ करता है, वह शिव को प्राप्त करता है और वहाँ शिव के साथ आनन्दित होता है।

महेश्वरः—महेश्वर लक्षमण शक्ति को कहते हैं। अखण्ड चैतन्य समुद्र के जिस अंश में प्रलय भाव का प्रकाश हो। उस चैतन्यांश का नाम महेश्वर है। अर्थात् आत्मा जहाँ पर प्रलय क्रिया का अभिमान करे उस स्थान में उसका महेश्वर नाम से ध्यान किया जाता है। जो क्रिया शक्ति प्रकाशित होती है, उसी का नाम माहेश्वरी शक्ति है। इसका तदनरूप वृषभ (बैल) है। यहाँ वृषभ शब्द का अर्थ धर्म है जैसे 'गो' का होता है। इसके तप, शौच, दया और दान ये चार चरण हैं। धर्म सत्य गुण से उत्पन्न होता है और सत्य शुभ्र वर्ण का है। महा गौरी उमा का वाहन भी वृष ही है—

श्वेते वृषे समारूढा श्वेताम्बरधरा शुचिः।
सजागौरी शुभं दद्यान्महादेव प्रमोददा॥

वृषभ अवतार शंकर की एक कथा शिव पुराण में इस प्रकार है। क्षीर सागर का मन्थन हुआ और उनमें से अन्य रत्नों के अतिरिक्त अमृत भी निकला। अमृत के निकलते समय उसकी जो बूंद बाहर गिरी, उनसे बहुत सुन्दर स्वरूप वाली स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं। मन्थन से निकली सभी वस्तुएँ यथायोग्य देवता, ऋषि, मुनि, मनुष्य और राक्षसों ने बाँट ली। अन्त में बचे हुए अमृत को प्रलयाग्नि तथा सूर्य के समान तेजस्वी बलि आदि दैत्यों ने देवताओं को परास्त कर हस्तगत कर लिया। विष्णु ने माया से स्त्री का रूप धारण कर दैत्यों से फिर उसे छीन लिया। मायावियों में श्रेष्ठ विष्णु ने मोहिनी स्त्री का रूप धारण कर सब दैत्यों को मोहित कर लिया और उस अमृत को देवताओं को पिला दिया। विष्णु ने समुद्र से उत्पन्न स्त्रियों से श्रेष्ठ पराक्रम वाले अनेक प्रकार के रणकुशल पुत्रों को उत्पन्न किया। वे विष्णु पुत्र स्वर्ग लोक तथा भूलोक में उपद्रव मचाने लगे। उनके उपद्रव से त्रस्त अगस्त्य मुनि तथा देवतागण ब्रह्मा को साथ लेकर कैलाश पर्वत पर गये। शिवकी अनेक प्रकार से स्तुति करते हुए ब्रह्मा बोले हे सर्व-स्वामिन्! हे महादेव! आप सम्पूर्ण लोक की रक्षा करें पातालस्थित विकारीविष्णु पुत्रों के उपद्रव को शान्त करें।'

ऋषि तथा देवताओं सहित ब्रह्मा से इस प्रकार की स्तुति सुनकर भगवान शिव त्रैलोक्य की रक्षा करने के निमित्त तथा पाताल से विष्णु पुत्रों को लाने के लिए तैयार हुए। इस समय भगवान शंकर ने उपद्रव को शान्त करने के लिए वृष का रूप धारण किया—

ततस्स भगवान् शम्भुः कृपासिंधु महेश्वरः।
तदुपद्रवनाशाय वृषरूपो बभूव ह॥

उसके बाद बलपूर्वक गरजते हुए शिव ने भयंकर शब्दों के साथ पाताल में प्रवेश किया। उनके गर्जन से नगर एवं पुर गिरने लगे तथा वहाँ के निवासियों में खलबली मच गयी। वृषभ रूप धारी शिव बली एवं पराक्रमी विष्णु पुत्रों से लड़ने को तैयार हुए। वे विष्णु पुत्र यह देखकर बड़े क्रोधित हुए और वे शिव के सम्मुख आये। वृषभ रूपी महादेव अपनी खुर तथा सींग से प्रहार कर विष्णु पुत्रों का वध करने लगे। इससे क्रुद्ध होकर विष्णु ने वृषभ रूपधारी भगवान शिव पर प्रहार किया। महाबली वृषभ क्रोधित होकर विष्णु के सम्पूर्ण शस्त्रों को निगल गया और

का वर्णन कामन्दक नीति आदि में अनेक स्थानों में आया है। जब आम्र-वृक्ष में फूल-फल आ जाते हैं तो उसे सहकार कहते हैं, जो हमें बसन्त ऋतु और नये वर्ष की सूचना देता है। आम्र फल से खट्टे-मीठे दोनों रसों का स्वाद मिलता है। यही एक ऐसा फल है जिसे बार-बार मुँह से बाहर निकालने और पुनः मुख में रख लेने में भी उच्छिष्ट नहीं माना जाता, घृणा नहीं की जाती। उसे राजनीति में प्रत्यक्ष देखा जाता है। वहां मुख से निकले, कहे हुए वचनों को वापस लेने, पलटने पर भी अनुचित नहीं माना जाता। राजनीति में समयानुसार विभिन्न घटनाचक्रों एवं रहस्यों को बार-बार बाहर-भीतर करना चाहिए। इसमें कोई दोष नहीं है, बल्कि इससे राज्य व्यवस्था सरस होती है। जैसे—आम को बार-बार मुँह में डालिये और निकालिये तो उससे कुछ न कुछ रस मिलता है।

दूसरे हाथ में अक्षसूत्र है। यह गति का प्रतीक है। राजनीति स्थिरता नहीं चाहती। नीति का स्थिर होना उसका मृत्यु सूचक है। इसका एक रहस्य यह है कि यह बाह्य रूप में साधु अपने को प्रकट करता है, किन्तु उसके प्रत्येक दाने को अलग-अलग करते रहना यह शिक्षा देता है कि विरोधी शत्रुओं में विभेद नीति द्वारा शत्रु को शक्तिहीन रखने के लिए आपस में कलह कराते रहना चाहिए जिससे सदैव शत्रु निर्बल बना रहे और उनमें एकता न हो।

तीसरे हाथ में अन्न-पात्र का तात्पर्य सम्पन्नता से है। राजा के लिए खाद्य-सामग्री की प्रचुरता अति आवश्यक है। चौथे हाथ में कमण्डलु (जलपात्र) है। इस जलपात्र का आशय जगत-मंगल है। वह नीति कोई नीति नहीं है जो जनहित न कर सके। इसकी गति वक्र हो, पर परिणाम सदैव सीधा होना चाहिए। सारी लड़ाई शान्ति व्यवस्था हेतु ही की जाती है। दूसरा पक्ष यह भी है कि राज्य-नगर नदी के समीप तट पर ही बसाये जाते हैं तथा राजा का दुर्ग भी नदी के तट पर होना उत्तम होता है। नदी से दुर्ग पर शत्रु से युद्ध के समय रक्षा का साधन और प्रजा सेना के लिए अन्न-जल संग्रह आवश्यक है।

इतिहास ऐसी कई घटनाओं का उल्लेख कर रहा है जबकि सेना प्रबल होते हुए भी केवल अन्न और जल के अभाव में पराजित हुई है। इसी प्रकार की राजनीति तथा न्याय का प्रतीक चिह्न धर्मराज के हाथ में दण्ड का होना, दण्ड शक्ति का प्रतीक है। मुगल-शासन काल में राज्य न्याय का प्रतीक तुला थी। बौद्ध और जैन राज्य काल में न्याय का प्रतीक एक साथ सिंह और अजा बकरी का एक घाट पर जल पीना था। इसका अर्थ हुआ निर्बल और सबल दोनों के साथ न्याय का समान व्यवहार होना।

साम का भावार्थ है धन द्वारा पुरस्कार, प्रलोभन देकर प्रभावित करना, पक्ष में रखना। 'दण्ड' शक्ति प्रदर्शन का प्रतीक है। सेना पुलिस द्वारा शक्ति का प्रदर्शन कर लोगों को वश में करना 'भेद' का अर्थ है। शत्रुदल में आपस में विभेद पैदा करना, उनकी गति-विधियों की सूचना गुप्तचरों द्वारा प्राप्त करना है।

राजनीति की प्रतीक सारिका ही क्यों ?

भारतीय नीति-शास्त्रों में राजनेता के मुख के प्रतीक के रूप में सारिका का विधान सर्वथा उचित ही किया गया है। प्राचीन साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि इसका भाव-बोध बड़ा ही उचित होता है। मर्म को छूने वाली चतुराई से परिपूर्ण इसकी वाणी से सभी प्रसन्न हो जाते हैं। इसी से इसको राजनायक का प्रतीक माना गया है। सारिका की चतुरता को उजागर करने वाली ऐसी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।
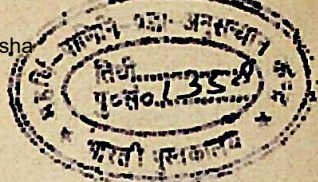
सारिका का परिचय

सारिका, मैना पक्षी का संस्कृत नाम है; जिसके राज-निघन्टु के अनुसार अनेक पर्याय हैं। मधुरालापा, पूती, मेघाविनी, गोराष्टिका, गोविराटी, गोरिका, कलह-प्रिया, त्रिलोचना।

सारिका एक चतुर पक्षी है। इसमें अन्य पक्षियों की अपेक्षा विशेष प्रकार की मेधा होती है। इसमें शब्द सुनकर धारण करने की अद्भुत शक्ति विद्यमान हैं।

सारिका की बोली बहुत ही मधुर होती है। इसलिए इसको मधुरापाला भी कहते हैं। यह अपने वाणी के माधुर्य से जन-मानस को आकृष्ट कर लेती है। भगवान श्रीराम कहते हैं, लक्ष्मण मैं तो ऐसा मानता हूँ माता कौशल्या के प्रति मुझसे अधिक प्रेम उनकी पाली हुई सारिका से ही है। क्योंकि उसके मुख से माँ को सदा यह बात सुनाई देती है कि ऐ तोते तूँ शत्रु के पैर को काट रखा अर्थात् हमें पालने वाली, माता-कौशल्या के शत्रु के पाँव को क्षत-विक्षत कर दे। वह पक्षिणी होकर भी माता का इतना ध्यान रखती है और मैं उसका पुत्र होकर भी उनके लिए कुछ नहीं कर पाता।

"मन्ये प्रीतिविशिष्टा सा मत्तो लक्षण सारिका।
यत्तस्याः यते वाक्यं शुक पादमरेर्दश॥"

यह स्पष्ट है कि सारिका में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक कुशल राजनीतिज्ञ में होने चाहिए। सारिका का शरीर भी मनमोहक होता है। उसकी वाणी रसाल के समान मधुर होती है। वह बड़ी बुद्धिमती होती है। इतना ही नहीं, वह राजनीति में सब से सफल होने का साधन जो कलह है, इसके स्वभाव में रचा-पचा है।

सारिका के गुण-धर्म का वर्णन महाकवि कालिदास ने विस्तार पूर्वक किया है। मेघदूत के यक्ष ने अपने पत्नी के दुःख को अभिव्यक्त करने के लिए उसने सारिका को ही चुना था। क्योंकि उसकी पत्नी भी एक घर में सारिका के समान बन्द पड़ी थी। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सारिका मधुरभाषी, चालाक और दूसरे को अपनी और आकृष्ट करने वाली चिड़िया है।

यक्ष की पत्नी अपनी सहृदुःखभागिनी मैना से पूछती है कि कहो मैना, तुम पिंजड़े में बन्द होकर अपने प्रियतम की भी कभी याद करती हो।

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा,
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचां न सारिकां पंजरस्थां,
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति॥

सारिका प्राचीनकाल से मानव समाज के लिए मनोविनोदिनी पक्षी रही है। यजुर्वेद की अनेक संहिताओं में इसको पुरुष जैसी बोली बोलने वली (पुरुष वाचक) कहा है। तैत्तिरीय संहिता (३) १४।४ तथा वाजसेनेयी संहिता २४।३३ (पुरुष वाचक) मनुष्यवद्वादिनी "शारिः शुकी" अमर कोश टीकाकार भानु जी दीक्षित ने इसकी व्युत्पत्ति हिंसार्थक शृ धातु से करते हुए कहा है—

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में अनेक स्थान पर सारिका के चातुर्ययुक्त गुणों का उल्लेख मिलता है। इन्हीं गुणों के कारण से ही सारिका राजनीति के मुख का प्रतीक है।

---

* मेघदूत ८२। वा. रा. अयोध्याकाण्ड ५३/१२

卐

पुराण इतिहास

इतिहासः कुशाभासः सूकरास्यो महोदरः।
अक्षसूत्रं घटं बिभ्रत्यङ्कजाभरणान्वितः॥"
"पुराणं चम्पकाभासं शुकवक्त्रं च तुन्दिलम्।
अक्षसूत्राभयं ज्ञेयं नानाभरणभूषितम्॥"

पुराण के देवता का स्वरूप जिस प्रकार का बताया गया है वह हमारे समक्ष एक मनोहारि चित्र उपस्थित कर देता है। तत्वतः देखते हुए हमें सोचना पड़ता है कि "शुकवक्त्रं" उस देवता का विशेषण क्यों है? वस्तुतः शुक एक ऐसा पक्षी है जिसकी वाणी बहुत ही मधुर एवं रोचक होने से मनोग्राही होती है। पुराणों का भी (कथा वैशिष्ट्य के द्वारा अपना) जनमन-रञ्जनकारी स्वरूप तो प्रसिद्ध है ही। पुराण के देवता का वर्ण चम्पक कुसुम के समान है। उनकी तोंद भी थोड़ी बढ़ी हुई है जो उसकी संग्रहशील वृत्ति की परिचायिका है। हाथ में अक्षसूत्र निरन्तर चक्र के समान भ्रमण करने वाले काल का प्रतीक है। विभिन्न आभरणों अर्थात् अलंकारों से उसकी शोभा में वृद्धि हो रही है।

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति है "पुरा भवमिति पुराणम्"। मत्स्य पुराण के ५३ वें अध्याय तथा देवीभागवत के १ स्कन्द के तीसरे अध्याय का यह श्लोक अवलोकनीय है।

"विस्तराणि पुराणानि चेतिहासश्च शौनक।
संहिता पञ्चरात्राणि कथयामि यथागमम्॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं विप्र! पुराणं पञ्च लक्षणम्॥"

पुराण के देवता के स्वरूप की कल्पना में इनके दो हाथ हैं। ग्रीवा से ऊपर का भाग मुख शुक पक्षी का है, किन्तु सारा शरीर मनुष्य-सा है। अङ्गों पर आभूषण शोभित हैं। एक हाथ में अक्ष-सूत्र (माला) दूसरा हाथ वरद मुद्रा में है।

पुराणं चम्पकाभासं शुकवक्त्रं च तुन्दिलम्।
अक्षसूत्राभय ज्ञेयं नानाभरण भूषितम्॥

पुराण देवता का मुख शुक क्यों? इस सम्बन्ध में अनेक स्थानों पर शुक जी का नाम आता है तथा शुक के द्वारा ऋषियों का कथा सुनना, इससे यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में नाग और मत्स्य, वानर, किन्नरों की भांति ही शुक भी मानव शरीर में एक जाति का नाम था। फिर प्रतीक में शुक पक्षी होना भी एक रहस्य है। हमारे ज्ञानी मुनियों ने जीव को पशु माना है और वह अपने कार्यों द्वारा ही प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। अतः पुराण ज्ञाता में जो गुण होने चाहिए वे सभी गुण शुक पक्षी में हैं। जिसकी प्रशंसा और वर्णन महाकवि बाणभट्ट ने कादम्बिरी में एक दूत द्वारा राजा शुक के सम्मुख कहलाया है।

कृतप्रणामायां च तस्यां मणिकुट्टिमोपविष्टायां स पुरुषस्तं विहङ्गमं शुकमादाय पञ्जरगतमेव किंचिदुप सृत्य राज्ञे न्यवेदयत् । अब्रवीच्च-देव, विदित सकलशास्त्रार्थः, राजनीति प्रयोगकुशलः पुराणेतिहासकथालापनिपुणः, वेदिता गीतश्रुतीनां, काव्यनाटकाख्यायिका ख्यानक प्रभृतीनाम परिमितानां सुभाषितानाम ध्येता स्वयं च कर्त्ता, परिहासालापपेशलः, वीणावेणुमुरजादीनामसमः श्रोता, नृत्तप्रयोग दर्शननिपुणः, चित्रकर्मणि प्रवीणः द्यूतव्यापारे प्रगल्भः ।

यह सुगा सभी शास्त्रों का मर्म जानता है। कामन्दक प्रतिपादित नीतिशास्त्र की शिक्षा में कुशल है। पुराण और इतिहास की कथा कहने में भी यह बड़ा चतुर है। संगीत विद्या की श्रुतियों को भी यह भलीभाँति समझाता है। काव्य-नाटक प्राचीन, अर्वाचीन, शृगार नीति वैराग्यात्मक बहुतेरे सुभाषितों का इसने अध्ययन किया है और स्वयं उनकी रचना भी करता है। हँसी की बातें करने में भी यह बहुत चतुर है। वीणा, बांसुरी मृदंग आदि को बड़े प्रेम से सुनता है। यह नृत्य देखने में रूचि रखता है। द्युतकर्म में भी इसकी दक्षता देखने योग्य है। यह प्रणय कलह से कुपित नारियों को प्रसन्न करने के बहुतेरे उपाय जानता है। हाथियों, घोड़ों पुरुषों-स्त्रियों के भले-बुरे लक्षणों से यह भली-भाँति परिचित है। इन कारणों से यह तोता जगत तलका एक रत्न है।

इसका नाम वैशम्पायन है। समुद्र सदृश आप समस्त रत्नों का आगार है। यह समझ कर ही मेरे स्वामी की कन्या इस तोते को लेकर श्रीमान के चरणों में उपस्थित हुई है। आप इसे स्वीकार करें। ऐसा कह कर वह वृद्ध उस पिंजरे को राजा के सम्मुख रख कर दूर हट गया। उसके हटने पर तोते ने राजा शूद्रक की ओर निहारा और अपना दाहिना पैर उठा कर अतिशय स्पष्ट स्वर स्वर्णमयी वाणी में जय शब्द का उच्चारण करके महाराज के ही विषय में इस आर्य छन्द के श्लोक का पाठ किया। अपनी इच्छापूर्ति के निमित्त जब कोई व्रत लेता है तो वह हवन करने के लिए अग्नि के पास बैठता और अहङ्कार त्याग देता है। इसी तरह आपके शत्रुओंकी स्त्रियों के दोनों स्तनों ने व्रत लिया है। क्योंकि वे पुनः पुनः आँसुओं में नहाते हैं, हृदय में धधकती शोकाग्नि के समीप बैठे रहते हैं और उन्होंने आहार को त्याग दिया है ॥ २१ ॥

इस आर्य छन्द को सुनकर राजा शूद्रक चकरा गया और पास ही एक अति बहुमूल्य स्व सिंहासन पर बैठे हुए बृहस्पति के सदृश समस्त नीतिशास्त्र के ज्ञाता वृद्ध ब्राह्मण एवं मन्त्रियों में प्रधान मन्त्री कुमार पालित से सहर्ष बोला, मन्त्री जी, आप ने इस पक्षी के वर्णोच्चारण की स्पष्टता तथा स्वर की मधुरता सुनी। पहले तो यही बड़े आश्चर्य की बात है कि यह तोता इस प्रकार अलग-अलग वर्णों का विभाजन करके मात्रा अनुस्वार और शब्द शुद्धिपूर्वक अलङ्कारमयी सुपष्ट वाणी बोलता है और फिर यह अभिमत विषय में सुशिक्षित मनुष्यों के समान संस्कार सम्पन्न एवं प्रतिभामयी बुद्धि का प्रदर्शन कर रहा है क्योंकि इसने अपना दाहिना पैर उठाकर जय जय करते हुए मेरे ही सम्बन्ध में इस आर्य छन्द को बड़े ही स्पष्ट और मधुर स्वर में गाया है।

सहायक ग्रन्थों के नाम

लेखक, सम्पादक या प्रकाशक का नाम

१ शब्दकल्पद्रुम सम्पादित चौखम्भा संस्कृत सीरीज, २ ऋग्वेद, सामवेद श्री दा० पं०सातवलेकर ३ वैदिक सम्पत्ति पं० रघुनन्द शर्मा, ४ वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, ५ पुराण परिशीलन पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, ६ स्कन्द पुराण गीता प्रेस, गोरखपुर, ७ मत्स्य पुराण श्री राम प्रताप त्रिपाठी, ८ वराह पुराण हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ९ अग्नि पुराण गीता प्रेस, गोरखपुर १० निरुक्त पं० भगवतदत्त, शास्त्री ११ उपनिषद अंक गीता प्रेस, गोरखपुर १२ कल्याण मासिक का योगाङ्क गीता प्रेस, गोरखपुर १३ कल्याण मासिक का साधनाङ्क गीता प्रेस, गोरखपुर १४ कल्याण मासिक का ईश्वराङ्क गीता प्रेस, गोरखपुर १५ कल्याण मासिक का शक्ति अंक गीता प्रेस, गोरखपुर १६ तुलसीकृत रामायण गीता प्रेस, गोरखपुर १७ वाल्मीकि रामायण गीता प्रेस, गोरखपुर १८ राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय भगवती प्रसाद सिंह १९ पद्म चरितम् पं० दरबारीलाल २० आध्यात्म रामायण गीता प्रेस, गोरखपुर २१ शाक्त प्रमोद वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई २२ मेरु तंत्र वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई २३ वैदिकी ले० श्री लाल विहारी मिश्र २४ दुर्गा सप्तशती २५ देवी भागवत २६ पुराण विमर्श आचार्य बलदेवप्रसाद उपाध्याय, २७ त्रिदेव निर्णय पं० शिव शर्मा, २८ अमर कोश, २९ विष्णु पुराण गीता प्रेस, गोरखपुर, ३० कौटिल्यअर्थशास्त्र श्री रामतेज शास्त्री, ३१ श्री बल्लभ राम, सालिग्राम साङ्गवेद विद्यालय रजत जयन्ती अंक, काशी ३२ शिव पुराण वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई। ३३ कालिदास के पक्षी ले० हरिदत्त वेदालंकार ३४ हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ ले० श्री त्रिवेणी प्रसाद सिंह, ३५ वैदिक साहित्य, आचार्य बलदेवप्रसाद उपाध्याय ३६ प्रतीक विज्ञान ले० डा० इन्दुमती मिश्रा ३७ श्री राधा क्रम विलास ले० शशिभूषण दास गुप्त, ३८ गंगा पत्रिका, मिथिला ३९ रूप मण्डन बलराम श्रीवास्तव, ४० योग वाशिष्ट अच्युत ग्रन्थमाला ४१ कालिदास ग्रन्थावली आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, ४२ कादम्बरी पं० रामतेज शास्त्री, ४३ भारत के प्राणाचार्य श्री रत्नाकर शास्त्री;